(4.2)

वैराग्यशतक

भाषा

211

श्रीभर्तृहरिकृतं

वैराग्यशतकम् ।

कविवर श्री हरद्याल कृत-

पद्यात्मक भाषया सहितम् ।

जिसको

मोतीलाल बनारसीदास,

अध्यक्ष

पंजाब संस्कृत पुस्तकालय, लाहौर

ने निज श्री

मुम्बई

संस्कृत प्रेस में छपवाया ।

सन् १९२२ सम्वत् १९७९



श्रीगणेशाय नमः ।

अथ

श्रीभर्तृहरिकृतं वैराग्यशतकम् ।

कविवरहरिदयालकृतपद्यात्मक-
भाषानुवादसहितम् ।

दोहा ।

दुरदवदन दुरजनदलन, मदनकदन शिवनंद ।
एकरदन सुखसदनके, पादपद्मप्रति वंद ॥१॥

सवैया ।

जिहिं शेष की सेज पै शैन कियो, पद कोमल कोमल-
तीकमलाही । करमें दर चक्र सरोज गदा, भृगुपाद
गेरत्नक अंगद बांहीं ॥ जिहिं पाद को वारि सुचारु
विचीर धऱ्यो त्रिपुरारि सदा शिर माहीं । अमरूप
जिसे उरभीतर है भवभीतिर है कछुता उरनाहीं ॥२॥

अथ दो श्लोकोंकरके मूलमंगलाचरण करते हैं.

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नाऽनन्तचिन्मात्रमूर्तये।
स्वानुभूत्येकमानाय मनःशांताय तेजसे॥१॥
चूडोत्तंसितचारुचंद्रकलिकाचञ्चच्छिखाभा-
स्वरो।लीलादग्धविलोलकामशलभः श्रेयो-
दशाग्रे स्फुरन्। अन्तःस्फूर्जदपारमोहति-
मिरप्राग्भारमुच्चाटयन् चेतः सद्मनि यो-
गिनां विजयते ज्ञानप्रदीपो हरः॥२॥

श्र. १

दोहा।

शांत प्रकाशस्वरूप प्रति, नमो सर्वदा होय।
सृष्टि स्थिति लय जो भविन, रविशशिभासक सोय ३
दिक्कालादि प्रच्छेद बिन, चिदानंतवपु जोय॥
स्वानुभवैकप्रमाण तिहिं, नमो काव्य इतिहोय॥४॥

अथ शिवोपमा—तोटक छंद।

·र ज्ञानप्रदीप सदा लसके।मन मंदिर योगिनके वसके॥
·हुमोहउदैजुहदैतिनके। तमपुंजवहीतिहिंकोहनके ५.

पुनिलोलअनंगपतंगमहा। क्षणमाहिंस्वभावकताहिं दहा। निहकामसमूहगुणाअदिपै। सुसनेहसनेहवही अरिपै ॥६॥ जिनके अतिभालकि भाग भले। अस दीपकता मनधाम जले। जिहिंभूषणभालमयंकसही। कलिका कलदूज कलंक नहीं ॥७॥ विबता सुशि खासुप्रकाशसमं। दिन राति विभाति प्रशांततमं पुनि तीनगुणोंयुतदेवत्रये। हगतीनकिनैनमिऐनकये॥८॥ सतसंग वसे हरिनेत्र सजे। सरजोअजलोचन दूज सजे। अगनाक्षविषेनिजहै सतमो। भवपालअसे अस ईश नमो ॥९॥

दोहा।

भरत शतक वैराग को, भाषकार हरिदाल।
केवल प्रेमहुलास उर, लव--न कविनकी चाल ॥१०॥
अरथ वरन वृत न युत, भूपवचन शिवऊप।
बाल व्याह की गालिसम, दूषण भूषणरूप ॥११॥

कवित्त।

सोम नाम विप्रवर गिरिजाके वर कर.
दीनो सुधाफल कर दीनो नरनाहिके।

भूपति स्वपतनीको रानी निज मीतहीको,
ताने दीनो गीतकीको नीको फल चाहिके ।
आगे गणिका मरागे धरापति आगे धरा,
नरनाथ माथ धुना सुन धुना ताहिके ।
हा हा कामिनीके हित हते काम नीके अब,
ताहि तजों ताहि भजों शीश शशि जाहिके॥१२॥

श्लोकः ।

यां चिन्तयाम्यनुदिनंमयिमा विरक्ता। सा-
प्यन्यमिच्छति नरं स नरोऽन्यसक्तः ।
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ॥३॥

सवैया ।

जिनको नित मैं चित मोचित मोतिन की रति मो
तन माहिं रतीना । बहु आन पुमान कि संगरती
पुनिता मन मैं गणिका गहकीना॥ धिक है अबला
भृत कंद रचै अरु मोहिं धिकार जुमार अधीना।
इति रीति समूह कि प्रीति तजी नृप होय युगीश्वर

ईश्वर चीना ॥ १३ ॥

दोहा ।

भन्यो भूप वैराग्यशत, निजमन शिक्षा हेतु ।
सुनो जनो शुभगिरा तिहिं, जगतजलधिमाहिंसेतु १४

सोरठा ।

अति नदवत गंभीर । श्रीहरिभर्तृविरागशत ।
जन्म मरणभय नीरःविकसित कमल श्लोकगण॥१५॥

कवित्त ।

दोषदृष्टि नालि गुरु दल पद लघुपर,
अंकमात्रा तरीतर अरथ सुवास है ।
डाटे काँटे मंद संग इंदु हेर निसपंद,
अरक विवेकके प्रकाशते विकास है ॥
भोगी भूँड भोग मल भोगत न तजें पल,
संतनको मन अली सेवे सदा तास है ।
ऐसो नर आँखोंसों विलोकों नाहिं जाहिं आखों,
भाखों निजमनहीको वाक्य भगनास है ॥१६॥

दोहा ।

श्रुतिवक्ता भुक्ता ॐ वनि, बहुरि इतर बहु लोक ।

तिनहिं विलोक न सकहिं तिन, सुभग सरोजश्लोक॥
तिनके अनअधिकारको, करके प्रगट बहोर।
श्रीहरि भर्तृ स्वचित्तप्रति, भनत सुवचन निचोर॥१८॥

श्लोकः।

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गेषु भाषितम्॥४

कवित्त।

ग्रंथनके ज्ञाते माते मतसरकीचबीच,
धरानाथ मदमाथ भरे दरसात हैं।
दूषण चमोरें मोरें भूषण सुभाषणको,
पंडित भूपाल तो न सुनें मेरी बात हैं॥
पुना आन जंतु जेते दुखी मूढ दीन ते ते,
मोते सकुचात हम आते सकुचात हैं।
पात्रबिना भाखे राखे हवनको राखे तैसे,
जीरण मो गातमो सो बात होतजात हैं॥१९॥

सोरठा।

वक्ता है नृप आप, श्रोता निज मन को कियो।

रुद्र श्लोक अलाप, कियो अचल निहताप चित॥२०॥

श्लोकः ।

भ्रान्तं देशमनेकदुर्गविषमं प्राप्तं न किञ्चित् फलं त्यक्त्वा जातिकुलाभिमानमुचितं सेवा कृता निष्फला । भुक्तं मानविवर्जितं परगृहेष्वाशंकया काकवत् तृष्णे जृम्भसि पापकर्मनिरते नाद्यापि संतुष्यसि८

कवित्त ।

दुरगम विषम अशेष देश भ्रमकर,
लह्यों मैं कलेश गयों लेन नाहिं धनको ।
जातिकुलका ऽभिमान उचित विहाय ताहि,
सेवा कीनी फलहीनी शोच भयो मनको ।
काक यों सशक मानविन परधाम खायों,
अजे रजे न सप्रीत भजे दुरितनको ।
बहते बिछोर नीच तृष्णे कीनो ढोर अब,
होर जो नचात कहाँ होर करें जनको ॥२१॥

श्लोकः ।

खलोल्लापाः सोढाः कथमपि तदाराधनप-
रैर्निगृह्यान्तर्बाष्पं हसितमपि शून्येन मन-
सा । कृतश्चित्तस्तम्भः प्रहसितधियामञ्ज-
लिरपित्वमाशे मोघाशे किमपरमतो नर्त-
यसि माम् ॥६॥

पुनः वही कवित्त ।

आशे फलहीनी कीनी तेरे बलसों सबादि,
मूढोंके कुबैन मोढ़े नैन छोड़ें बनको ।
चित्तको संकोच कीनो कदगमों रोक लीनो,
भावी शोक चीनो पीनो कीनो न वचनको ।
हस्यो भी निकार दंत जैसे चिंतामान जंत,
जोरकर कर करी वंदना नीचनको ।
तैसे नमों करों तुम्हें तेरे संग चिर भ्रमें,
अब चाहे छोर हमें काहे दाहे जनको ॥२२॥

श्लोकः ।

उत्खातं निधिशङ्कया क्षितितलं ध्माता

गिरेर्धातवो निस्तीर्णः सरितांपतिर्नृपत
यो यत्नेन संतोषिताः । मन्त्राराधनतत्प
रेण मनसा नीताः श्मशाने निशाः प्राप्तः
काणवराटकोऽपि न मया तृष्णेऽधुना
मुञ्च माम् ॥ ७ ॥

तोटक छंद ।

अब तो तज तू हमको तृषने । तव लाभ विषे मम
खेद घने ॥ तुम कीन मुझे मन वास जवै । धनशंक
उठी उर मोर तवै ॥२३॥ सभको वित है सभ भूमि
तले। हम खोद थके परयंत जले॥ गिरिधातु कृशानु
प्रताप दही। अबला भर सहाय न होय मही ॥२४॥
हम सिंधु तरे मुकतादि सुने । मुकतादि कहाँ शुक-
त्यादि लुने ॥ बहु भूपनको यतनों करके । अति
कीन प्रसन्न लजा हरके ॥२५॥ कर चित्त इकाग्र
कुमंत्र जपे । शमशानन में निशि पुंज खपे ॥ करि
हों जब मैं वश भूतन को । पर की हर देहिं विभू-
तिन को ॥ इमि आयु वृथा मम हंत सभी । मुहिं

काए वराट कभी न लभी ॥ कत काज निलाज अकाज दहो । तज मोहिं कहूं अव आन गहो ॥

सोरठा ।

करचो ब्रह्मते जीव, चाहे अव चाहे कहा ।
किधौं करे निरजीव, आशे तव आशय कवन॥२८॥

श्लोकः ।

परिभ्रमासि किं वृथा क्वचन चित्त विश्राम्यतां स्वयं भवति यद्यथा भवति तत्तथा नान्यथा । अतीतमपि न स्मरन्नपिच भावि संकल्पयन् अतर्कितगमागमाननुभवस्वभोगानिह ॥ ८ ॥

सवैया ।

शांति निजांतर किं न गहें कत डोलें वृथा भवमो मघना । होय यथा सु तथा निज है तुमते अन्यथा वहु होवत ना ॥ प्रीति न साथ वितीत भली कछु हाथ मिली न यथा स्वपना । मौन गहो अव मौन गहो तुम मोर गिरा जिन मोर मना ॥ भावि के भाव अभाव यथा न रमो तिन मान भके सुमना ।

मध्य कि भोग कि मध्य रमो गत राग भ्रमो अन उत्तर ना ॥ अह्म नपुंसक यौं मन तू विनती तव दंप ति मो सुख ना। टेरत मैं प्रति फेर तुमै तुम मोमत को मत फेर मना ॥३०॥

श्लोकः ।

परेषां चेतांसि प्रतिदिवसमाराध्य बहुधा प्रसादे किं नेतुं विशसि हृदयक्लेशकलिलम्। प्रसन्ने त्वय्यन्तःस्वयमुदितचिन्तामणिगुणे विविक्तःसंकल्पःकिमभिलषितं पुष्यति न ते॥

पुनः कवित्त ।

चित्त रे तूं बित्तके निमित्त दिन रात नित्य,
सेवत परोंके चित्त एही दुःख अति रे ।
तिनोंकी जो मुद तासों उदित क्लेशों कर,
मत मान करे हत ताको ताको मत रे ।
निजचिंता तज सोवे स्वांतर प्रसन्न होवे,
चिंतामणि गुण जोवे देहमें महत्त रे ।

तातें अभिलषित न तेरो किधों सिद्ध होय,
सुधापान करेंते न किधों व्याधि हत रे ॥३१॥

दोहा ।

तनमो तनक निवास तव, चिंतामणि तज ताहिं ।
वहिर कृपणगृह पराभव, सहत द्रविणहित काहिं ॥

एतस्माद्विरमेन्द्रियार्थगहनादायासकादा
श्रयात् श्रेयोमार्गमशेषदुःखशमनव्यापा
रदक्षं क्षणात् । शान्तं भावमुपैहि संत्यज
निजां कल्लोललोलां गतिं मा भूयो भज
भंगुरां भवरतिं चेतः प्रसीदाऽधुना ॥१०॥

पुनः कवित्त ।

इंद्रियों के भोग सारे भारे रोग देनवारे,
ताको कीजे हेय मत श्रेयपथ तज रे ।
पापअद्रि नाशनको वज्र पाकशासनको,
दाहे दोषघासनको मोक्षशिखी भज रे ॥
हूजो शांत भावबीच प्रापत कदापि नीच,
आपती कलोल लोलगतित ने लज रे ।

क्षणभंग भवराग ताको मन करो त्याग,
मोक्षको वैराग्य सहकारी तास भज रे ॥३३॥

श्लोकः ।

मोहं मार्जयतामुपार्जय रतिं चन्द्रार्ध-
चूडामणौ चेतः स्वर्गतरङ्गिणीतटभुवा-
मासङ्गमङ्गीकुरु । को वा वीचिषु बुद्बु-
देषु च तडिल्लेखासु च स्त्रीषु च ज्वाला-
ग्रेषु च पन्नगेषु च सरिद्वेगेषु च प्रत्ययः ११

पुनः कवित्त ।

परिवारके सनेहको निवार देहि मन,
वीची बुदबुदे रेखा दामनी समानिये ।
पुना दीपतागनिमै नागनमै नदीवेग,
माहिं जैसे सुख नाहिं तैसे ताहि जानिये ।
देवनदीतीरकी पवित्र धरापर बैठ,
नीलकंठमाहिं नित उतकंठा ठानिये ।
अब ऐसी रीति करो भोगनकी प्रीति हरो,
गुरुवेदवाक्य धरो तीन ताप हानिये ॥३४॥

श्लोकः ।

आक्रान्तं मरणेन जन्म जरया यात्युज्ज्वलं यौवनं संतोषो धनलिप्सया शमसुखं प्रौढाङ्गनाविभ्रमैः । लोकैर्मत्सरिभिर्गुणा वनभुवो व्यालैर्नृपा दुर्जनैरस्थैर्येण विभूतिरप्यपहता ग्रस्तं न किं केन वा ॥ १२ ॥

पुनः चौपाई ।

जन्म महावर ग्रस्यो मरण कर । अघको जप ज्यों मृगको नाहर ॥ पुनि निर्मल अति गुवानुकूला । जरा करा ताको निर्मूला ॥ दुरित हरत ज्यों तुरत गंग जल । कलह गौन ज्यों करे मौन बल ॥ पुनि धन चाहि ग्रस्यो संतोषा । यज्ञविपाकग्रसे ज्यों रोषा ॥ तरल तरुण तरुणी के लोचन । ताहि विभ्र महि सब सुख मोचन ॥ ज्यों निरवेद खेद भव हारे । पुन। सतो ज्यों रजतमटारे ॥ ग्रसे गुणीके गुणको खलयों । ब्रह्म विचार विकार ग्रसे ज्यों ॥ ग्रास्यो

यों क्षिति को उर गादिक। लाज त्रासको ज्यों कामादिक। ग्रसित दुर्जनों कर नृप ऐसे। गिले प्रश्नको उत्तर जैसे॥ सकल विभूति अनास्थिरताने। ग्रसी मनीषा ज्यों चिंताने। इस प्रकार जनके के नाहीं। ग्रस्त कालकर याभव माहीं॥ अजपिपीलिका लगजगजेतो। ग्रस्त समस्त काल करतेतो॥

दोहा।

सकल भोग भवहेतु मन, चपल सदोष सशोक।
ता तज भोगी जनों युत, गुरुश्रुतिपंथ विलोक॥४१॥

श्लोकः।

अग्रेगीतं सरसकवयः पार्श्वतो दाक्षिणात्याः पृष्ठे लीलावलयरणितं चामरग्राहिणीनाम्। यद्यस्त्येवं कुरु भवरसास्वादने लम्पटत्वं नो चेच्चेतः प्रविश सहसा निर्विकल्पे समाधौ।

पुनः नाराच छन्द।

विचित्र राग रंग जे, स्वअग्रभागमें बने।
कविंद आसपासमें, रसाल वाक्य जे भने॥

प्रवीन चारु कामिनी, जि पृष्ठभागमें लसें ।
अलंकृती मनोहरी, मुखारविंदते हसें ॥ ४२॥
करे गृहीत चामरं, विलाससों भ्रमावती ।
तिने करे करे हलें, करें ध्वनी सुभावती ॥
अरोग देह आयुषा, महा अशत्रु राज है ।
जबै समीप आपने, लखें इतो समाज है ॥ ४३॥
प्रपंच भोगस्वादमें निशंक तो अबी रमो ।
भवे तथा न तौ कहाँ, वृथा इतै उतै भ्रमो ॥
असंग विश्वते भवो अरण्यवास लीजिये ।
असंप्रज्ञातमैं मना, प्रवेश शीघ्र कीजिये ॥४४॥

श्लोकः ।

पुण्यैर्मूलफलैः प्रिये प्रणयिनि प्रीतिं कुरु-
ष्वाऽधुना भूशय्यानववल्कलैरकरुणैरुत्तिष्ठ
यामो वनम् । क्षुद्राणामविवेकमूढमनसां
यत्रेश्वराणां सदा चित्तव्याधिविवेकविह्व-
लगिरां नामापि न श्रूयते ॥ १४ ॥

पुनः कवित्त ।

भूमि सेज मूल फल मेध नव वल्कल;
करने न परें दैव आगे रच धरे हैं।
करो इने साथ रति प्यारी प्रेमवारी मति,
उठो उठो तामैं अब जामैं विव ठरे हैं ॥
तुच्छ अविवेकी शठ मूढ मन वोल कटु,
जाके चित्त चिंता आग कर सदा जरे हैं ॥
ऐसे धनवाननके नाममात्र कानन मैं;
जाहि माहिं काननमैं कबूं नाहिं परे हैं ॥४५॥

दोहा ।

शब्द खलोंके नामके; परे न कर्णमँझार ।
ऐसे निर्जन वनविषे, बसो बुद्धि वर वार ॥४६॥

श्लोकः ।

पातालमाविशसि यासि नभो विलंघ्य, दि-
ङ्मण्डलं भ्रमसि मानस चापलेन। भ्रा-
न्त्यापि जातु विमलं कथमात्मनीनं, तद्ब्र-
ह्म न स्मरसि निर्वृतिमेषि येन ॥ १५ ॥

पुनः सवैया ।

शठजाहिपनालकुशून्यकुलाँघकिशूनोफिरैदिगम-
डलधावत । विनभाग्यमिलैनधनादिसुखंतव चैत्र-
लतादुखहेतु जनावत ॥ ततब्रह्मनिजातमशुद्धमना-
भ्रमसोपिकभीसुखहेतु न ध्यावत । तवद्वंद्वजवैभ-
वसिंधुतवैतवशांतिभयेविनशांतिनआवत ॥ ४७॥

टीका=चौपाई ।

मूढ करे पाताल प्रवेशा । देख्यौं चाहैं देश फणेशा ॥
विष्णुसहस्रनाम नवतलको । भाषे शेषपिखौं तातनको॥
फणसहस्रपर मणिअवतंसा । भासहि तमध्वंसकसमहंसा
ल्यावौं किवैं एकमणि हरके । नाशैं सब कलेश तबघरके
तहँते मूढ शून्य मुड आवहि । पुनाकाशको लाँघ
सिधावहि ॥ सुरपतिलोक विलोकनकारण । सुधा-
तडाग कल्पतरु वारण ॥ सुरभी नंदनवन उपवन-
को । दरशौं सुरनसहित वाहनको ॥ बैस पाकशास-
न सिंहासन । करे कवनविधि विबुधहिं शासन ॥
किवैं परे मम तहँ परचो जब । निजगृह पाठवौं दिव्य-

भोग तव॥ इत रीतो उत रीतो आवहि। पुन दिगमं-
डलको उठ धावहि॥ दुर्गम विषम अदर्शी ठौरहि।
द्रव्यनिमित्त निरंतर दौरहि॥ चित्तचपलताकरअह-
निशिमें। भटकहिव्यर्थकहाँदशदिशिमें॥ तत निर्मल
ब्रह्मातमरूपा। साक्षी शुद्ध असंग अनूपा॥ भ्रमकर-
भी कवहूँकहुँरीते। नहिंसुमरसिनिजब्रह्म अभीते॥
व्यष्टि समष्टि उपाधिभेदकर। जीवेश्वरकीद्विधाभिधा.
पर॥ माया ऽविद्यामलमिल भासे। मुग्धोंके उरमाहिंः
प्रकाशे॥ तदपिसुविमललखेतिहँनिर्दुख। जाहि-
पिखेनशजाहिंनिखिलदुख॥ जासुलाभकरलाभ-
अपरना। जासुखकरसुखअवरनवरना॥ एकवार है
दर्शन जाको। देखन योग्य है पुनि नाको॥
जासु रूप है कर भवमाहीं। इतररूप पुनि होवत
नाहीं॥ जो सर्वेकसमान समाना। तोमें भी सो रम्यो
न आना॥ त्वं न सर्वते अन्यत जाते। वही रूप तव
निश्चय ताते॥ ब्रह्म सर्वमो पूरण जैसे। सर्वविषे
तुम पूरण तैसे॥ जाते श्रुति तव ब्रह्म बखाना। ताते

तव वपु यांभव नाना ॥ भूतनको है पूत अभूतन ।
जडपरिणामि नाशममभृदजन॥चेतनइकरस अव्यय
आतम । ताविनजडसंघातअनातम ॥ सतो अंश भू-
तनकी जो है । ताते अंतःकरण भयो है ॥ रागद्वेष
को घोष सु जाते । सोपि रावरो रूप न ताते ॥
कार्यद्वारा जिहिं अनुमाना । नातर सो प्रत्यच्च
अभाना ॥ विंबोपाधिको कारण जो है । कारण-
देह न आतम सो है ॥ तीनोपाधिविहीनो जोऊ ।
रूप तुमारो निश्चय सोऊ ॥ नहिं ततब्रह्मरूप ध्यावे ।
जाकर मूढ मुक्ति तू पावे ॥

दोहा ।

रे मन तज निज बहिर्गति, अंतर्वर सुखहेत ।
अंतर्मुख विन सुख नहीं, विदित सनातन नेत ॥६४॥

श्लोकः ।

चेतश्चिन्तय मा रमां सकृदिमामस्थायि-
नीमास्थया, भूपालभ्रुकुटीकुटीरविहर-
व्यापारपण्याङ्गनाम् । कन्थाकञ्चुकितः

प्रविश्य भवनद्वाराणि वाराणसीरथ्यापं-
क्तिषुपाणिपात्रपतितांभिक्षामपेक्षामहे।१६

पुनः कवित्त ।

चंचलाको मत चिंत चंचला कराति चित्त,
चंचलाको चीन चित्त चंचला के वत है ।
भूपनकी भ्रुकुटी कुटीमें बारबधूवत,
गतागतके व्यापारविच विचराति है ॥
काशीजूकी वीथिनके जूथन में धाम ग्राम,
ताके द्वारे अटों ओढ़ कंथा ए सोमति है ।
ताते पाणिपात्र परे भिक्षा तासों प्राण धरे,
कमला कीराति लोकके मला कराति है ॥६५॥

दोहा ।

श्री हरके श्रीहरपुरी, वाराणसिको वास ।
जीवत भुगत मुकत मरे, करे चहो चित तास॥६६॥

श्लोकः ।

उद्यानेषु विचित्रभोजनविधिस्तीव्राति-
तीव्रं तपः, कौपीनावरणं सुवस्त्रममितं

भिक्षाटनं मण्डनम् । आसन्नं मरणं च मङ्गलसमं यस्यां समुत्पद्यते, तां काशीं परिहृत्य हन्त विबुधैरन्यत्र किं स्थीयते १७

पुनः कवित्त ।

उपवनोंमध्य सिद्ध भोजन विविधविध,
तपवृद्धहूतें जासमैं प्रधान है ।
पटल कोपीनहीको अप्रमाण पट नीको,
भीखहीको रमणीको रटनो प्रमाण है ॥
चार खाणी प्राणी जामैं मरके न फेर आवैं,
आवे ढिग मृत्यु तामें मंगल समान है ।
छोड़ ऐसी काशी कैसे सुधी और ठौर बैसे,
कैसे भये देव यम हांसीको स्थान है । ६७ ॥

दोहा ।

अङ्ग त्यजहिं वाराणसी, तउ न खेद कछु मोहिं ।
त्यजहिं सुजन खल मुक्तिप्रद, दुसह दुःख मम ओहि ॥
रे मन तू तो त्याग जिन, मुक्तिद्वार हरद्वार ।
सुमर सरित समरारि तिहँ, जगजीवन दिन चार ६८

श्लोकः ।

नायं ते समयो हरस्यमधुना निद्राति
नाथो यदि, स्थित्वा द्रक्ष्यसि कुप्यति प्रभु
रिति द्वारेषु येषां वचः । चेतस्तानपहाय
याहि भवनं देवस्य विश्वेशितुर्निर्दौवारिक-
निर्दयोक्त्यपरुषं निःसीमशर्मप्रदम्॥ ६८॥

पुनः कवित्त ।

भूपनकी चाहि करे कहे चित्त जाहिं घरे,
गये छड़ीदार हरे सतकार जोत है ।
ना रे इह काल महीपाल गुरुमतेमाहिं,
अजे समो नाहिं नरनाथ सुखी मोत हैं ॥
सुने वैन तेरे जब क्रोध नैन हेरे प्रभु,
जाके पौरे ऐसे कौरे वाकको उदोत हैं ।
छोड़ ताके पौर दौर मोक्ष ठौर काशीमाहिं,
ध्वनि न कठोर जहाँ दौरप अगोत हैं ॥ ७० ॥

दोहा ।

अप्रमाण आनंदप्रद, पुना जन्म जहँ हान ।
वसो मना आनंदवन, तज नृप कृपणस्थान ॥७१॥

अलं भरतवैराग्यको, प्रथमाऽध्याय अनूप ।
स्वमन शिष्यको शिक्षमत, दई स्वामिसम भूप ॥७२॥

दोहा ।

द्वितिये पश्चात्तापके, भाखे दशक श्लोक ।
जाके श्रवण मनन करे, नष्ट होंहि मन शोक ॥१॥

श्लोकः ।

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत् संसार-
विच्छित्तये. स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्ध-
र्मोऽपि नोपार्जितः । नारीपीनपयोधरोरु-
युगलं स्वप्नेऽपि नालिङ्गितं, मातुः केवल-
मेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम् ॥१६॥

कवित्त ।

पादकंज शिवजीके न अराधे हम नीके,
कारण उधार जीके रमणीके चीनमें ।
नाकपौर ताकनके धाकनमें पुण्य दत्त,
तेऽपि न एकत्र कछु कीन भागहीन में ॥
उभैपीनकुची नारी भारी रूपगुणवारी,

स्वपनेमँझारी भी आलिंगन न कीन मैं ।
माताको यौवनवन तासु नाश हेतु जन,
केवल कुठार होय खोय सुख तीन मैं ॥ २ ॥

श्लोकः ।

विद्या नाधिगता कलंकरहिता वित्तं च नोपार्जितं, शुश्रूषापि समाहितेन मनसा पित्रोर्न संपादिता । आलोलायतलोचना युवतयः स्वप्नेऽपि नालिंगिताः, कालोऽयं परपिण्डलोलुपतया काकैरिव प्रेरितः २०॥

पुनः नाराच छन्द ।

अदोष वेदबोधको, अधेन मैं न कीन है,
न सेव माततातकी, मँझारचित्त हीन है ॥
दया न दीन जंतुपै, करी मनाक मैं कवी ।
न न्यायवंत द्रव्य भी, इकत्र कीन लौं अवी ॥३॥
विशाल नीलकंजनैन, चंचले हृदे प्रिया,
न कीन सोपनेपि मैं, अलिंगनं महात्रिया ॥

ग्रपिंडपै सलोभ काक, यों ससो गतो इमैं,
विकाशमातश्रास्यकंजनाशको करी जमैं ॥ ४ ॥

श्लोकः ।

धिक् तज्जीवितमापदां हि निलयं पित्रास-
वन्धूर्जितं. दीनानाथजनोपकारकरणव्या-
पारदूरीकृतम् । मन्दीभूतशशाङ्कशेखर-
चनास्तिनततटप्रश्लेषविश्लेषितम् ॥ २१ ॥

पुनः कवित्त ।

ता जीवनको धिक्कार जोऊ दुःखको अगार,
पितृ बंधु परिवार कर नित्त जित्त है ।
दीनानाथ जनोंपर उपकारको व्यापार,
ताको त्रिसकार जामैंभार नित्य थित्त है ॥
जाके भालविषे इंदु द्वंद्व ता पदारविंद,
ताको ध्यान जामो मंद भूतनिंदा नित्त है ।
अललोल लोचन विशाल कुचतट त्रिया ।
ताको मेला भी न भयो योंही वेला वित्त है ॥५॥

श्लोकः ।

नाभ्यस्ता भुवि वादिवृन्ददमनी विद्या विनीतोचिता खड्गाग्रैः करिकुम्भपीठदलनैर्नाकं न नीतं यशः । कान्ताकोमलपल्लवाधररसः पीतो न चन्द्रोदये तारुण्यं गतमेव निष्फलमहो शून्यालये दीपवत् ॥ २२ ॥

पुनः कवित्त ।

वादीवृंदके दमनवारी प्यारी संतनको,
ऐसी विद्याको शलोक पढ्यो मैं न लोकमें ।
खडगोंके अग्रकर करी कुंभपीठनको
पीठके न यश नीठ कीनो सुरलोकमें ॥
कांताके अधर मृदु हलवत रसनिधि
सो न चूसे उदे विधु स्वेछित अशोक में ।
ज्ञान नाक नारी तीनोको न रस लीनो अहो.
वृथा युवा कीनो जैसे दीप शून्य ओकमें ॥ ८ ॥

श्लोकः ।

अजानन्माहात्म्यं पतति शलभस्तीव्रद-

हने. स मीनोऽप्यज्ञानाद्बडिशयुतमश्नाति पिशितम् । विजानन्तोऽप्येते वयमिह विपज्जालजटिलान्न मुञ्चामः कामानहह गहनो मोहमहिमा ॥ २३ ॥

पुनः कवित्त ।

दीपमें पतंग परे जरे न प्रताप जाने
मीन सु अज्ञाने भखे कुंडीमिले मासको ।
गज गजीहित पर्यो खात खात अंकुशको
रागमें कुरंग राग करे निजनाशको ।
पंकजके गंधबीच नीच भृंग मीच गहे
इति आदि अज्ञ नाश करें निज स्वासको ।
अहो हा सघन महामोहको प्रताप लहा,
शुभाशुभ जानों पै न हानों भोग आशको ॥७॥

दोहा ।

मोहमहातमरूपको, गहन महातम आहि ।
मोहे पुरुष महातमा, जहँ विवेकरवि नाहिं ॥८॥

श्लोकः ।

ज्ञानं सतां मानमदादिनाशनं
केषाञ्चिदेतन्मदमानकारणम् ।
स्थानं विविक्तं यमिनां विमुक्तये
कामातुराणामतिकामकारणम् ॥ २४ ॥

सवैया ।

ए श्रुतिज्ञान सुजाननके अभिमान मदादि विकार निवारे ॥ केचित मोसम नीचनके चितमो बहु मान मदादिक धारे ॥ शून्य यथा मठ साधुनको अति-मोक्षको साधन दोष प्रहारे ॥ सो हमसे मदनातुरको, अतिकामको कारण वास समारे ॥ ६ ॥

श्लोकः ।

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वापि विषया, वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयममून् । व्रजन्तः स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनसः, स्वयं त्यक्ता ह्येते शमसुखमनन्तं विदधति ॥ २५ ॥

पुनः कवित्त ।

पुण्यनके वश्यते सुभोग चिर वसते.
निमित्त नशे नशते मर्याद आदि तिनमें ।
कान भेद भोगनके भेदमें न तजे जन,
एकको वियोग तो अवश्य होत तिनमें ॥
स्वते जब जावें तब मनको तपावें भारी,
मोक्ष तिने आप ताप मोक्षे तिने क्षणमें ।
ऐसे मोक्षप्रतिबंधी विषे लखे मैं संबंधी.
को कुभागी विन मैं जो रागी होत इनमें ॥ १० ॥

श्लोकः ।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः । कालो न यातो वयमेव यातास्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः २६

पुनः मात्रिक सवैया ।

अहो सखे मैं भोग न भोगे भोग्यो गयो आप में मूढ ॥ क्रम क्रम हमरो प्राक्रम सगरो लीनो भोगों भोग अमूढ ॥ भोक्ता जान भोग मैं भोगे उलटा भोगों

भोग्यो मोहिं ॥ शिश्नोदरपर भयोनचीनोकीनोमैंनि-
जापमोंद्रोह ॥११॥ इंद्रियगणके संयम तपको ताप्यो
मोहिं न कबहूं ठीक ॥ काम क्रोध लोभादि अग्निकर
मैं संतप्त भयो अवतीक ॥ कालचक्रवत भ्रमत सर्वदा
शीत उष्ण वपु धर विख्यात ॥ समै न बीत्यो हौं
हीं बीत्यो भयो विलक्षण मम संघात ॥ तृष्णा
जीरण भई न अवलौं मैं हूँ भयो जरजरो आप ॥
वृद्ध भयो दुर्बुद्धि गई नहिं मो उरमें यहि गुरुसंताप ॥
अधम काममो अवधिगई सब लब्ध भयो अवलौं
कलुनाहिं ॥ हहा न हरके पाँ पकरे हर पाप करे मैं
अहनिशि माहिं ॥ १२ ॥

श्लोक: ।

आघ्राय पुस्तकं धन्याः सर्वे विद्या इति
स्थिताः । शतबारं पठित्वापि हा न विद्यो
जडा वयम् ॥ २७ ॥

पुनः सवैया ।

फूल निबंध सुगंध रहस्यकु धार तजे सब स्वातम
चीनो ॥ ते धन यासिधि राज तजे भवबंधनवृंद

पुनः कवित्त ।

पुण्यनके वश्यतें सुभोग चिर वसत्ते.
निमित्त नशे नशत्ते मर्याद आदि तिनमें ।
कान भेद भोगनके भेदमें न तजे जन,
एकको वियोग तो अवश्य होत तिनमें ॥
स्वते जब जावें तब मनको तपावें भारी,
मोत्ते तिने आप ताप मोत्ते तिने त्तणमें ।
ऐसे मोत्तप्रतिबंधी विषे लखे में संबंधी.
को कुभागी विन में जो रागी होत इनमें ॥ १० ॥

श्लोकः ।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः । कालो न यातो वयमेव यातास्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः २६

पुनः मात्रिक सवैया ।

अहो सखे में भोग न भोगे भोग्यो गयो आप में मूढ ॥ क्रम क्रम हमरो प्राक्रम सगरो लीनो भोगों भोग अमूढ ॥ भोक्ता जान भोग में भोगे उलटा भोगों

भोग्यो मोहिं ॥ शिश्नोदरपर भयो नचीनो कीनो मैं नि-जापमों द्रोह ॥११॥ इंद्रियगणके संयम तपको ताप्यो मोहिं न कबहूं ठीक ॥ काम क्रोध लोभादि अग्निकर मैं संतप्त भयो अवतीक ॥ कालचक्रवत भ्रमत सर्वदा शीत उष्ण वपु धर विख्यात ॥ सबै न बीत्यो हौं हीं बीत्यो भयो विलक्षण मम संघात ॥ तृष्णा जीरण भई न अबलौं मैं हूँ भयो जरजरो आप ॥ वृद्ध भयो दुर्बुद्धि गई नहिं मो उरमें यहि गुरुसंताप ॥ अधम काममो अवधिगई सब लब्ध भयो अबलौं कछु नाहिं ॥ हहा न हरके पाँ पकरे हर पाप करे मैं अहनिशि माहिं ॥ १२ ॥

श्लोकः ।

आघ्राय पुस्तकं धन्याः सर्वे विद्य इति स्थिताः । शतवारं पठित्वापि हा न विद्मो जडा वयम् ॥ २७ ॥

पुनः सवैया ।

फूल निबंध सुगंध रहस्यकुं धार तजे सब स्वातम चीनो ॥ ते धन यांविधि राज तजे भवबंधनवृंद

कियो जिहँ छीनो॥ मैं शठ ते शतबार पढ़ेनहिं स्वातमचीनु भयो मद पीनो॥ हा नरके तनमो बसके नरके बसबेकुं पराक्रम कीनो॥ १४॥

श्लोकः।

ब्रह्मज्ञानविवेकिनोऽमलधियः कुर्वन्त्यहो दुष्करं, यन्मुञ्चन्त्यपि भोगभाञ्ज्यपि धनान्येकान्ततो निःस्पृहाः। संप्राप्तानि पुरा न संप्रति न च प्राप्तौ दृढप्रत्ययो, वाञ्छामात्रपरिग्रहाण्यपि परं त्यक्तुं न शक्ता वयम्॥ २८॥

पुनः कवित्त।

ब्रह्मज्ञानके विवेकी विमल मनीषा जाँकी,
अहो दुहक्रिया ताँकी पायो द्रव्य त्यागे हैं।
भोगनकी राशिको अवास धनते उदास,
जाँते भोगों ते निराश आतमानुरागे हैं॥
आदि में प्रापत अप्रापत इदानीं वित्त,
दृढ न प्रतीति हम आगे कछु पागे हैं।

इच्छा मात्र धनोंके इकत्रको न त्यागसकें,
वही बड़भागे हैं हमारे भाग भागे हैं ॥ १५ ॥

श्लोकः ।

भिक्षाशनं तदपि नीरसमेकवारं, शय्या च
भूः परिजनो निजदेहमात्रम् । वस्त्रं च
जीर्णशतखण्डमयी च कन्था, हा हा
तथापि विषया न परित्यजन्ति ॥ २९ ॥

पुनः अनंगशेखर छंद ।

याचयाचके अहार नाहिं सोपि स्वादवार,
लाभ होत एकवार भूखतापको अवार ।
शैनभूमिपै बनो न शाक सैनको गनो,
शरीरमात्र पोखनो न जोबनो सुपैदवार ॥
क्षीणचीर गोदरी अनेक लीरसों करी,
करी उजार झोंपरी अधेन ग्रंथ वारवार ॥
हाय हाय भोग चाहि नाहिं मैं तजे अजेपि,
मोर चित्त बैलको सवार बैलकेऽसवार ॥ १६ ॥

दोहा ।

अलं भरत वैराग्यको, भयो दूसरोऽध्याय ।
निंद्यो भूपति स्वापको, कल्यानारिसुभाय ॥१७॥

दोहा ।

अब तृतीय अध्याय में, आठ श्लोक उचार ।
वरणे महिमा कालकी, सुनो जनो उर धार ॥१॥

श्लोकः ।

अमीषां प्राणानां तुलितबिसिनीपत्रपय-
सां, कृते किं नास्माभिर्विगलितविवेकै-
र्व्यवसितम् । यदाढ्यानामग्रे द्रविणमद
निःसंज्ञमनसां कृतं वीतव्रीडैर्निजगुणक-
थापातकमपि ॥३०॥

कवित्त ।

इने प्राणत्राणकाज के के मैं न कीने काज;
कंजदलपै विराज कंकणीज्यों हत है ।
धनमदकर जाँके अंध मन आगे ताँके;

चके गुण बाँके निज तजी लाज मति है ॥
हौं तो गुणखानि तुम शक्रके समान,
कुरुक्षेत्र ग्रसे भानु मोमैं दान तदवत है ।
कीनी मैं इत्यादि कृति शासननिमित्त पर,
शासना भी सही परशासना रहत है ॥ २ ॥

श्लोकः ।

वयं येभ्यो जाताश्चिरपरिगता एव खलु ते, समं यैः संवृद्धाः स्मृतिविषयतां तेऽपि गमिताः । इदानीमेते स्मः प्रतिदिवसमासन्नपतनाद्गतास्तुल्यावस्थां सिकतिलनदीतीरतरुभिः ॥३१॥

पुनः कवित्त ।

जाहिं मातपितातें मैं भयो उतपन्न ते तो,
कालवश भये चिरकाल बीतगयो है ।
समबैसवारे द्वारे सिमृति सिधारे सारे,
रहे हम शेष देह वृद्धवेष लयो है ॥

नदीरिततीरपर तरु यों शरीर भयो
प्रतिदिन मृत्युतीरतीर अब अयो है ॥
गिले कालव्यालसम मेंडकके अजे हम,
भजें भोगमच्छरोंको मोसों मूढ जयो है ॥ ३ ॥

श्लोकः ।

तपस्यन्तः सन्तः किमधिनिवसामः सुरनदीं, गुणोदारान् दारानुत परिचरामः सविनयम् । पिबामः शास्त्रौघान् द्रुतविविध काव्यामृतरसान्, न विद्मः किं कुर्मः कतिपयनिमेषायुषि जने ॥ ३२ ॥

पुनः त्रिभंगी छंद ।

हे कछुक निमेषा हमरी बैसा लखों न कैसा काम धरों ॥ सुरसरिके तटपर कुटिआ ठटकर तामें तप करताप हरों ॥ गुण जाँहिं उदारे अस गण दारें मम रुचि धारें तिहँविचरों । गणग्रंथनमो उत काव्यनमो युत कथारसामृत पान करों ।

दोहा ।

तपत्रियसुधा असिद्धत्रय, निमिष आयुषामाँहिं ।
दुःखरूप भवते अवै, विन निराश सुख नाहिं ॥५॥

श्लोकः ।

यत्रानेकः क्वचिदपि गृहे तत्र तिष्ठत्यथैको
यत्राप्येकस्तदनु बहवस्तत्र चान्ते न चै-
कः। इत्थं चेमौ रजनिदिवसौ दोलयन्
द्वाविवाक्षौ कालः काल्या सह बहुकलः
क्रीडति प्राणिसारैः ॥ ३३ ॥

पुनः कवित्त ।

कालभगवान वृंद कलावान कालीसंग,
खेलत चौसार चार दिगहूँकी धरके ।
चारखाणी प्राणी गोटा रैन दिन पासे जोटा.
मारत अचूक चोटा दंपती अडरके ॥
जहाँ एक गेहमों अनेक तहाँ एक रहे,
एकते अनेक है क्षणेक एकूँ सरके ।

काल काली खाली कीने लोकपाली सने,
चौपट न हाली अजे शेष लोक करके ॥ ६॥

श्लोकः ।

आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जी-
वितं, व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो
न विज्ञायते। दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं
त्रासश्च नोत्पद्यते पीत्वा मोहमयीं प्रमाद-
मदिरामुन्मत्तभूतं जगत् ॥ ३४ ॥

पुनः कवित्त ।

भानुहुँके गतागतकर दिनदिनप्रति,
प्राण मोरे घटें जैसे कोरे घटे पानि है।
ग्राम कामों कर सारे भवके व्यापार भारे,
तामो मत्त मतवारे मृत्युको न ध्यान है॥
जातजरापातउतपात पेख भीतजात,
चीतमो न जात जैसे भीतमो न भान है।
मोहरूप मदिराप्रमादकर पान कीनो,

चौरा भयो भव गोराभवको न ज्ञान है ॥ ७ ॥

श्लोकः ।

जीर्णा एव मनोरथाः स्वहृदये यातं जरा यौवनं, हन्ताङ्गेषु गुणाश्च वन्ध्यफलतां याता गुणज्ञैर्विना । किं युक्तं सहसाऽभ्युपैति बलवान् कालः कृतान्तोऽक्षमी, ह्याज्ञातं स्मरशासनांघ्रियुगलं मुक्त्वाऽस्ति नान्या गतिः ॥ ३५ ॥

पुनः मात्रिक सवैया ।

अहो विचित्र मनोरथ सगरे में उरमें संभव फलहीन ।। इने न आदि अंत मधि चीनों, जलतरंग इव उपजतलीन । अनुजाग्रतबालादितीनत्रिकमैनहीनकछु-सुखपाति छीन । जरा कीन योवनको भोजन प्राक्रमहीन भयो मैं दीन ॥ बाँझ गुणज्ञों मोतनमैं गुण अफल भयेसबज्योंत्रियबाँझ ॥ कालक्षमा विन बली कृतांतो उपप्रापति अबहनेंकिसाँझ ॥ सहसा

युक्ति मुक्तिहितकोशुभजाँकरमनको सहसाजाय ॥
हरके पायकंजयुग हरके अवर श्रेयको कौन
उपाय ॥ ६ ॥

श्लोकः ।

भ्रातः कष्टमहो महान्स नृपतिः सामन्त-
चक्रं च तत्, पार्श्वे तस्य च सापि राजप-
रिषत्ताश्चन्द्रबिम्बाननाः । उद्रिक्तः स च
राजपुत्रनिवहस्ते बन्दिनस्ताः कथाः, सर्वं
यस्य वशादगात् स्मृतिपदं कालाय तस्मै
नमः ॥ ३६ ॥

पुनः कवित्त ।

जाँके वामे दाहने समंतचक्र होते अग्र,
राजनकी सभा थी मयंकमुखी नारिया ।
भूपनके पुत्र थे विचित्र वीर अहंकारी,
वृंद बंदीजन होते वंशके उचारिया ॥

अहो भाई भारी कष्ट भारी भूप भये नष्ट,
सिमृतिपदे प्रविष्ट जाँकी कथा भारिया।
हिंसक प्रपंचसविरंचिको असंग पुना
ताँहि कालवीरको जुहार बारबारिया ॥१०॥

सोरठा।

अहो भ्रात अतिकष्ट, जासु कालके वशि भयो।
भये प्राक सबनष्ट, गये सिमृतिपथ तिहिं नमो॥११॥

टीका—अरध भुजंगप्रयात छंद।

जिसे कालगाले, सुभूपालमाले
जिसे आसपासे, सुमंत्री प्रकाशे ॥१२॥
महावीर स्याने, सभी नीति जाने।
पुनर्जाहिं आगे, सभाराज लागे ॥ १३ ॥
चलें अग्र जाँके, तने भूप बाँके।
युवाढ्र्यमाते, सहंकार जाते ॥ १४ ॥
हुते चार नग्रे, सभोगा समग्रे।
तहाँ राजधानी, हुती शक्रसानी ॥१५॥
त्रिया इंदुतुंडी, मनो कामकुंडी।

जटी लाल मोती, घनी धाम होती ॥१६॥
चले भाट गाते, चिरंजीव दाते ।
जिने कोप आगे, सबै भूप भागे ॥ १७॥
शिरे छत्र छाजे दिशा चार भ्राजे ।
करी है सवारी, करो है सवारी ॥ १८ ॥
इने आदिराजे, हुते भासमाजे ।
सभी काल मारे, गने कौन सारे ॥ १९ ॥
भयेते पुराने, न को ताहिं जाने ।
कथा जे पुराणे, सुने नाम जाने ॥ २० ॥
पुनः तीन लोकी, सुनी औ विलोकी ।
निमेषेकमाहीं, गिले काल ताँही ॥ २१ ॥
युवा वृद्ध छोरे, कहूको न छोरे ।
नमो तास कालें, जिसे सर्व गाले ॥२२॥

दोहा ।

हने हनत पुनि हनेगो, उत्तम मध्यम मंद ।
गने बरोबर सर्वको, ताते ताको बंद ॥२३॥

श्लोकः ।

प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं,
दत्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम् ।
सम्मानिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किं,
कल्पं स्थितं तनुभृतां तनुभिस्ततः
किम् ॥ ३७ ॥

पुनः कवित्त ।

जिनो धनो कर सब मिले मनो काम जब,
ताको भयो सिद्ध तब कहाँ लाभ मान है ।
अरिनके शिरपर चरणको धरकर,
कहाँ भयो डार डर सोयो साभिमान है ॥
जौ सनेही जनों धनोंकर मान कीनो घना,
कहाँ भयो ताहिं भनों तू तो कुलभान है ।
कल्पपरयंत भोग भोगे जंतु कहा होग,
जाँते अंत नाशी लोक सने कारकान है ॥२४॥

दोहा ।

भयो कालभय प्रगट कर, तृतिय इतिश्री आप ॥

वैरागादि सुतहिं जने, हने सर्व भय ताप ॥ २५ ॥

दोहा ।

उत्कंठा निजचित्तकी, कहें चतुर्थेऽध्याय ॥
करत विनय नृप शंभुपहि, सात श्लोक बताय ॥१॥

श्लोकः ।

एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः । कदा शम्भो भविष्यामि कर्मनिर्मूलने क्षमः ॥ ३८ ॥

तोटक छंद ।

इक एकरु निस्पृहशांतमना । करपात्रपवित्रदिशावसना । करमा निरमूलनमैंनिपुना । शिवजूकबहै ममऐसदिना ॥ २ ॥

श्लोकः ।

स्फुरत्स्फारज्योत्स्नाधवलिततले क्वापि पुलिने, सुखासीनाः शान्तध्वनिषु रजनीषु द्युसरितः । भवाभोगोद्विग्नाः शिवशिव

शिवेत्यार्त्तवचसा, कदा स्यामानन्दोद्गत-
बहुलबाष्पप्लुतदृशाः ॥ ३९ ॥

पुनः वही कवित्त ।

शांत ध्वनी यामिनीकी चाँदनी अमित द्युति,
तासों गंगातीरतलो ऊजलो लसत है।
तापै सुखी वसूं कहूं शिव शिव शिव कहूं ,
ऐसी वाणी भनूं जैसे प्राणी दुखारत है ॥
प्रेमउदे पाथसाथ दृग भिगजाहिं कब,
आवैं साह साहसे रोमांच पुलकत है।
भवके आभोगनते भयो अब उदवेग,
करो ऐसी विधि वेग ऐसी मोरी माति है ॥ ३ ॥

श्लोकः ।

स्नात्वा गाङ्गैः पयोभिः शुचिकुसुमफलै-
रर्चयित्वा विभो त्वां, ध्येये ध्यानं निवेश्य
क्षितिधरकुहरग्रावपर्यंकमूले । आत्मा-
रामः फलाशी गुरुवचनरतस्त्वत्प्रसादा-

त्स्मरारे, दुःखान्मोद्दये कदाऽहं तव चरण-
रतोध्यानमार्गैकघस्रैः ॥ ४० ॥

पुनः कवित्त ।

न्हायकै न्हवाऊं गंगापाथसाथ नाथ तुमे,
शुचि फूलफलोंकर रुचि धर ध्यावेंगे ।
ध्यानयोग ध्यान तेरो तामैं लागे मन मेरो,
शैलदरी शिलाके पर्यंक पै सुहावेंगे ।
सुखी निजानंदकर फलाहारी रतितर,
गुरोंके वचनमों चरण थारे भावेंगे ।
समरारी थारी कृपा अनुसारे सारे दुःख,
सारें हम जदों सो दिहारे कदों आवेंगे ॥४॥

श्लोकः ।

अतिक्रान्तः कालो लटभललनाभोगसु-
भगो, भ्रमन्तः श्रान्ताः स्मः सुचिरमिह
संसारसरणौ । इदानीं स्वःसिंधोस्तटभुवि
समाक्रन्दनगिरः, सुतारैः फूत्कारैः शिव-
शिवशिवेति प्रतनुमः ॥ ४१ ॥

पुनः कवित्त ।

सुंदरीके भोगनमें सुंदर ए काल गयो,
धारके भवोट भ्रम्यो जगमग चिर मैं ।
पायो अतिखेद गयो थाक निरवेद अब,
चहों गंगातीरपर बहों उत गिरिमैं ॥
तुंग होहिं तनवार नैन पूरे प्रेमवारि,
कंठ दबे नामोच्चार गंगा जाके शिरमैं ।
भोगनरकागनिके हेतुको न भजों अब,
करो ऐसी विधि भवों भवमैं न फिरमैं ॥५॥

श्लोकः ।

अनावर्ती कालो व्रजति स वृथा तन्न गणितं, दशास्तास्ताः सोढा व्यसनशतसंपातविधुराः । कियद्वा वक्ष्यामः किमिव बत नात्मन्यपकृतं, वयो यावत्तावत्पुनरपि तदेव व्यवसितम् ॥ ४२ ॥

पुनः कवित्त ।

काल ए पुनागमी न सो तो भयो वृथा क्षीण,

तन चीन मन दीन नारी रमणीकमैं ।
सैकरे कलेशोंके प्रवेशोंकर व्याकुली जो,
सो सो दशा सही सही कहाँ कहाँतीक मैं ॥
जो जो करों काम सो सो देत दुखग्राम मोको,
अहो वही अपकाम करों अबतीक मैं ।
प्रवल अदृष्ट दुष्ट जोरत अनिष्टमाहिं,
याके शांत विना नाहिं शांति चीनों ठीक मैं ॥६॥

दोहा ।

नष्ट अदृष्ट न ज्ञानविन, ज्ञान न विन वैराग ।
ताते भवनिर्वेदप्रद, जाते भवदुख त्याग ॥ ७ ॥

श्लोकः ।

अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा, मणौ वा लोष्ठे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा । तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यान्ति दिवसाः, क्वचित्पुण्यारण्ये शिवशिवशिवेति प्रलपतः ॥ ४३ ॥

पुनः सवैया ।

पुण्यवने वस कौने दिने भनों श्रीशिवशंभु जटी समरारी । नागनमोतिनहारनमो उतशत्रुबलीमैं सुमित्रमँझारी ॥ माहिंमणी मृदपिंडविषे मधफूलों-के साथर पाथर भारी । वा तृणबीच त्रियानविषे सबमैंसमहैकहृष्टि हमारी ॥ ८ ॥

श्लोकः ।

गङ्गातीरे हिमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य, ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिना योगनिद्रां ग-तस्य । किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशङ्काः, कण्डूयन्ते जरठहरिणाः शृङ्गमङ्गे मदीये ॥ ४४ ॥

पुनः कवित्त ।

गंगतीरपर हिमगिरिशिलापर हम,
बाँधे पदमासनको मन इंद्री जीतके ।
ब्रह्मके सुध्यानकी अभ्यासविधिसों निवास,

योगनिद्रामाहिं करों हरों ताप चीतके ॥
जरठ कुरंग करें शृंगोसंग कंडू मोहिं,
सुखसों अभीत मोको जानें सम भीतिके ।
पारवतीनाथ मे अनाथके अभीतिवारे,
उत्तम दिहारे कब आवें ऐसी रीतिके ॥ ९ ॥

दोहा ।

निजविषाणकर हरिण कब, संघर्षहिं मम देह ।
मोहिं खबर हे हर न है, कब है मम अस देह ।१०।

श्लोकः ।

कदा वाराणस्याममरतटिनीरोधसि वसन्
वसानः कौपीनं शिरसि निदधानोऽञ्जलिपुटम् । अये गौरिनाथ त्रिपुरहर शम्भो त्रिनयन प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥ ४५ ॥

पुनः कवित्त ।

काशी गंगा के किनारे भवते किनारे होके,

कदौं वसौं वसन कौपीन एक धार के ।
दोऊ हाथ जोरकर नाय माथ नमो करौं,
मृदुवाणीसाथ रटौं नाम समरारिके ॥
भो प्रभो भवानीवर शंकर त्रिनेत्र हर,
त्रिपुरारी चंद्रधर भवभयहारिके ।
क्षणसम दिन सब मोरे बीत जावें जब,
ऐसे अह आवैं कब कहो कृपा धारके ॥ ११ ॥

श्लोकः ।

वितीर्णे सर्वस्वे तरुणकरुणापूर्णहृदयाः
स्मरन्तः संसारे विगुणपरिणामावधिग-
तीः । वयं पुण्यारण्ये परिणतशरच्चन्द्रकि-
रणैस्त्रियामां नेष्यामो हरचरणचित्तैक-
शरणाः॥ ४६ ॥

पुनः शंकर छंद

कब देहुँ मैं अरथीन सर्वस जोरकर कर दोय ॥
कब तरुण करुणा साथ अंतःकरण पूरण होय॥

दुष्कामको परिणाम योनी तिरयगादि अपार ॥
तिहँ दुःखसीमा पिख डरों निज मंद कर्म निहार
॥१२॥ जिम पुरायवनमहिं शरदहिमकर किरणप-
रिणत चारु ॥ वन तासुमैं कर वास मैं निर्वेदसहित-
विचार ॥ मम चित्तको हरचरणकी तर शरण होय-
सराग ॥ जब इमि वितावों विमल रैना तबी मैं-
वड़भाग ॥ १३ ॥

दोहा ।

तज स्वतंत्र भवभोग कब, लखों निजतम आप ।
देहविषे संदेहविन, विचरों तब निहपाप ॥ १४ ॥

श्लोकः ।

क्षान्तं न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न
संतोषतः, सोढा दुःसहशीतवाततपनाः
क्लेशान्न तप्तं तपः। ध्यातं वित्तमहर्निशं
नियमितप्राणैर्न शम्भोः पदं, तत्तत्कर्म कृ-
तं यदेव मुनिभिस्तैस्तैः फलैर्वञ्चिताः॥४७॥

पुनः दोहा ।

मुनों कर्म जो जो करें, सो सो हम हूं कीन ।
तिन कर्मोंके फलोंकर, हम ठागे मतिहीन ॥ १५ ॥
मुनिन लह्यो सुखरूप फल, मोहिं दुःखफल लीन ॥
करे कर्म सम विषम फल, यों मैं ठाग्यो दीन ॥१६॥
तजे गृहोचित सुख मुनिन, कर संतोष विवेक ।
अहं विदेशकलेशकर, त्यागे भोग अनेक ॥ १७ ॥
ऋषिन क्षमाकर खलोंके, सोढे दुर्वचनादि ।
मैंभी सहे कुबात पर, कर याचन सेवादि ॥ १८ ॥
शीत वात आतप दुसह, पुना कलेश अपार ।
मुनिन सहे तप धारकर, हमों सहे सह नार ॥१९॥
हरपदपद्मयुगल मुनो, ध्यायो मन कृत वाच ।
प्राणोंकर दिनरातिमें, ध्यायो धनको साँच ॥२०॥
क्षमा तृप्तियुत दुर्वचन, सहों तजों गृहभोग ।
सरुचि ध्याउँ हरपाँउँ मैं, तब तासम फलहोग ॥२१॥
ऐसे शंकरवंत दिन, हे हर शंकर शंभु ।
होहिं कभी सम मुनिनके, मैं विचरों तज दंभ ॥२२॥

अथवा दोहा ।

स्वरग अखयसुखलाभहित, करे मखादि सराग ।
करे याग ऋषिवाक गहि, पुना मुनिन मम ठाग २३
ता क्रतुके फलको जबे, परामर्श मैं कीन ॥
जगत पीन भय मम हृदय; होय पुण्य जब छीन ।२४।
गिरत नाकगिरिते अधे, पुरुषपखान तुरंत ।
सहत कष्टते कष्टतर, अनुभव करत सुजंत ॥ २५ ॥
जन्म मरण दृढ करणको, अतिदृढ करणसुभोग ।
ताहित मैं क्रतु करे भव को, मोसम खल होग ॥२६॥
भोगबड़ाई कर सुनो, मोहिं लुभायो चित्त ।
कर्मगर्त्तमहिं डार मम, हर्‍यो मुक्तिसुखवित्त ॥ २७ ॥

सोरठा ।

कर संतोष विवेक, तजे न गृहके उचित सुख ।
त्यागे भोग अनेक, भ्रमण विदेश कलेश कर ॥२८॥

दोहा

अहो छमा कर खलोंके, सहे न दुर्वचनादि ।
सोढे मोंहि कुवाक पर, कर याचन सेवादि ॥२९॥

शीत वात आतप दुसह, पुनः कलेशकदंब ।
मैं न सहे तप धार कर, सोढे बीच कुटुंब ॥ ३० ॥
ध्यायो धनको अहर्निश, मन कृत वचन सनेम ।
ईश्वरके पदपद्मको, ध्यायो त्यों न सप्रेम ॥ ३१ ॥
ए गुरु पश्चात्ताप उ :, भयो न आतम वित्त ।
विन विचार मैं मुग्धको, लिया विख्यों भवजित्त ॥ ३२ ॥
दुष्ट अदृष्ट सनेहयुत, उरकागर परवर्ण ।
भोगरागमय सो न लय, अंकविचार श्रवण ॥ ३३ ॥

सोरठा ।

प्रभु अनाथके नाथ, मैं अनाथ के माथपर ।
कृपादृष्टिके साथ, शिवानाथ निजहाथ धर ॥ ३४ ॥

दोहा ।

विन वैराग्य विवेक मैं, तव पदपंकज टेक ।
श्रीशंकर मम शंकरो, दे वैराग्य विवेक ॥ ३५ ॥

श्लोकः ।

धन्यानां गिरिकन्दरे निवसतां ज्योतिः
परं ध्यायतामानन्दाश्रुकणान् पिबन्ति

शकुना निःशंकमंकेशयाः । अस्माकं तु मनोरथोपरचितप्रासादवापीतटक्रीडाकाननकेलिकौतुकजुषामायुःपरं क्षीयते॥४८॥

पुनः चौपाई।

भवमेंवहीपुरुषबड़भागी। इत उत भोगचाहिजिहिं-त्यागी। करनिवासगिरिकंदरमाहीं। परमप्रकाश-रूप हरध्याहीं ॥ तिसेध्यानके आनँदकरके । तिन-हिं दृगनतेउदकजुसरके॥ वैसनिशंक अंककेमाही। अचवहिंविहँग सरितजलताँही ॥ धन्य जनोंकी-उमरा ऐसे। परी होत क्षय भाखी जैसे॥ हम मति-मंद अधन्यकुभागी। भुक्तिमुक्ति बिबतेवैरागी ॥ केवलव्यर्थमनोरथसंगा। ममशुभअवधिभवत परि-भंगा॥ बापीबाग तड़ागकिनारे। सुंदरमंदिर होहिं-हमारे ॥ ३६ ॥ सुभगभामिनीसहतिहिंअंतर। करहिंसुक्रीडाकेलिनिरंतर ॥ असमनराजकौतुक-हिंध्यावत। असीआयुषापरेबितावत॥ किंचित-

संचित भोगमँझारी । परीहोतक्षय वयस हमारी ॥ तिनो समान सुदिवस हमारे । कब आवहिंगे हे समरारे ॥४१॥

दोहा ।

निजभवहित भवत्यागहित, भो भव मैं तव ध्याउँ ।
शेष आयु निज कब वयं, सुखसों तथा विहाउँ ४२
भरतशतक वैरागको, ऽध्याय चतुर्थो बस्स ।
करी शुभेच्छा भरत नृप, ताविन जीवन भस्स ४३

दोहा ।

अब पंचम अध्यायमें, सात श्लोक अनूप ।
विधिको देत उलाहनें, बहुविध भरथरि भूप । १ ।

श्लोकः ।

प्रियसखिविपद्दण्डव्रातप्रपातपरम्पराप-
रिधिचपले चिन्ताचक्रे निधाय विधिः खल-
लः । मृदमिव बलात्पिण्डीकृत्य प्रगल्भ-

कुलालचक्रभ्रमयति मनो नो जानीमः
किमत्र विधास्यति ॥ ४९ ॥

कवित्त ।

मोमनको अज खल मृदापिंडसम खलु,
करके इकत्र चिंताचक्रपर धरे हैं ।
दुःखमाँझ दुःख होर लाभ साँझ भोर दंड,
जोर कर जोर कर फेरे चल करे हैं ॥
अत्र मित्र वल्लभ प्रगलभ कुलालवत,
कौने विधि करे विधि वैतो घरे घरे हैं ।
अहो मैं न जानों भोरा दैव मोते मुख मोरा,
चिंताचिताविषे मोरा चित्त नित्य जरे हैं ॥ २ ॥

श्लोकः ।

अभिमतमहामानग्रन्थिप्रभेदपटीयसी गु-
रुतरगुणग्रामाम्भोजस्फुटोज्ज्वलचान्द्रिका
विपुलविलसल्लज्जावल्लीवितानकुठारिका,
जठरपिठरीदुष्पूरेयं करोति विडम्बनम् ५०।

पुनः कवित्त ।

कुलको जो मान सो महान दृढ ग्रंथि आहि,
ताहिंके प्रभेदनके माँहिं स्यानी भारी है ।
गुणगुण कवीवारीको खिरानवारी शुभ्र,
सोम उजियारी लाजलताको कुहारी है ॥
मोच्छ भोगसुखआरी दीनताकलेशक्यारी,
धीरजके दीपको समान व्यारी हारी है ।
ऐसी पेटकी पिटारी लाई क्रूर मुखचारी,
पूर पूर सब हारी ठागी विश्व सारी है ॥ ३ ॥

श्लोकः ।

हिंसाशून्यमयत्नलभ्यमशनं धात्रा मरुत्कल्पितं, व्यालानां पशवस्तृणांकुरभुजः सृष्टाः स्थलीशायिनः । संसारार्णवलंघनक्षमधियां वृत्तिः कृता सा नृणां, याम न्वेषयतां प्रयान्ति सततं सर्वे समाप्तिं गुणाः ॥ ५१ ॥

कवित्त ।

नागोंको अहार ब्यार माटी कीनो सुखचार,
उद्यम न हिंसावार सुख लाभ होय है ।
अंकुर तृणादि स्वादु सुधासों प्रसाद पाय,
पशुवृंद अहलाद धार धरा सोय है ।
रची नरोंकी कुवृत्ति सिद्ध जो न विना वित्त,
धनासिद्धता अमित्त गुण नित्त खोय है ।
जनोंसो विरोधविधि कर कहा कीनो सिद्ध,
रंडीपूतसम ताहिं दंडीं नाहिं कोय है ॥ ४ ॥

सोरठा ।

भवनिधि तरणमँझार, वली नरनकी तरुण धी ।
बिधिना ताँहिं अधार, कत उलटी विधि ना कियो ॥५

श्लोकः ।

आधिव्याधिशतैर्वयस्यातितरामारोग्यमु-
न्मूल्यते, लक्ष्मीर्यत्र पतत्रिवच्च विवृतद्वा-
रा इव व्यापदः । जातं जातमवश्यमाशु

विवशं मृत्युः करोत्यात्मसात, तत्किं नाम निरंकुशेन विधिना यन्निर्मितं सुस्थितम् ॥ ५२ ॥

पुनः कवित्त ।

आधिव्याधिवृंद रोग ताहिंके संयोगकर,
आयुमें आरोग को वियोग भयो अति है ।
पुना रमा जहाँ बसे तातें खगवत नसे,
खुले द्वारेवत धसे विपता महत है ॥
जो जो निरमयो भयो परवशि ताहिं काल,
ततकाल निजवशि अवश करत है ।
अज जो अकुंडे कीनों काकी शुभ तिथि चीनों,
वेदलोकमतसों न सुखीनको सत है ॥ ६ ॥

श्लोकः ।

कचिद्वीणानादः कचिदपि च हाहेति रुदितं कचिद्विद्वद्गोष्ठी कचिदपि सुरामत्तकलहः । कचिद्रम्यारामा कचिदपि जरा-

जर्जरतनुर्न जाने संसारः किममृतमयः किं विषमयः ॥ ५३ ॥

पुनः कवित्त ।

बाँसुरीकी ध्वनी कहूँ हा हा इति रोना कहूँ,
श्रेष्ठनकी गोष्ठी कहूँ दुष्टता हरति है ।
कहूँ अंधधी सुराची महाकटुवाची कहूँ,
रामा अभिरामा रमा मन हरे अति है ॥
कहूँ दुष्ट कुष्ठ संग गरे अंग कष्ट सहें ।
सदा जलपत रहे जैसे जलपाति है
रचना निरंकुश विरंचिकी न जानें हम,
सुधारूप है कि विषरूप ए जगत है ॥ ७ ॥

श्लोकः ।

ये संतोषसुखप्रमोदमुदितास्तेषां न भिन्ना मुदो, ये त्वन्ये धनलुब्धसंकुलधियस्तेषां न तृष्णा हता । इत्थं कस्य कृते कृतं च विधिना तादृक् पदं संपदां, स्वात्मन्येव

समस्तहेममहिमा मेरुर्न मे रोचते ॥५४॥

पुनः कवित्त ।

रुचित सुमेरु मो न आवै काहू काम जो न,
निजगौरतामें सोना सदा गलतान है ।
जीव जे संतोष कर तृपत सदीवतर,
ताको शेष न आनंद रह्यो कछु आन है ॥
पुना जेई आन जन धनलोभकर मन,
व्याकुल हैं जाके ताकी तृषना न हान है ।
कौनके निमित्त ऐसी संपदा अमित्त रची,
इतिविधि करके न विधि बुद्धिमान है ॥ ८ ॥

श्लोकः ।

सृजति तावदशेषगुणाकरं, पुरुषरत्नमलंकरणं भुवः । तदनु तत्क्षणभाङ्गि करोति चेदहह कष्टमपण्डितता विधेः ॥ ५५ ॥

पुनः कवित्त ।

पुरुषरतन गुणगणको सदन पुनि,
पौरुषको आयतन परमप्रवीना है ।

सारी धराको शृंगार जडाजडको शिदार,
मोक्षभोगको भंडार चारु लख लीन है ॥
चतुरवदनको चतुर हम चीनो तब,
प्रथम जो ऐसे नरको तपत कीना है ।
ताके पाछे ततक्षण नष्ट करे हा हा कष्ट,
इत विधि विधिनाको पंडित न चीना है ॥ ६ ॥

दोहा ।

भरतशतकवैरागको,ऽध्याय पंचमो अंत ।
दोष अरोप विरंचिको, हरि दयालु वरणंत ॥ १० ॥

दोहा ।

षष्ठे श्रेष्ठजननकी, वर्णन करें प्रशंस ।
शुभश्लोक सत्रा तिसे, हृदयकमलको हंस ॥ १ ॥

श्लोकः ।

रम्यं हर्म्यतलं न किं वसतये श्राव्यं न गेयादिकं, किंवा प्राणसमासमागमसुखं नैवाधिकं प्रीतये । किन्तूद्भ्रान्तपतत्पतङ्गप-

वनव्यालोलदीपाङ्कुरच्छायाचञ्चलमाकल-
य्यसकलं सन्तो वनान्तं गताः ॥ ५६ ॥

छप्पय ।

गये संत वनमाहिं नाहिं को जंतु जाहिं महिं ।
वसनहेतु क्या धाम तलो अभिराम हुतो नहिं ॥
श्रवणयोग्य गीतादि कहाँ थो ताबियोग दुख ।
कै न अधिकरुचिहेतु प्राणसम मित्रसंगसुख ॥
ते हुते सर्वपर तिहँ तजे, दीपशिखावत तरल पिख ।
यत भ्रमतो पतत पतंगके, पंख पवनकर चपल शिख ॥

श्लोकः ।

ब्रह्माण्डमण्डलीमात्रं, किं लोभाय मन-
स्विनः । शफरीस्फुरितेनाब्धेः, क्षुब्धता
जातु जायते ॥ ५७ ॥

पुनः वही सवैया ।

यहि मंडलमात्रप्रपंचसबी, ततवेतनकोकतकारण
छोभा । जिमि सागरमेंमछरीमछरी, उछरे मछरी

कछु होतसुलोभा ॥ तिमिनैकलुभायसकेनतिसे, नणनीणलखीतिनलोककीशोभा । शुकतीज्ञभ्रमातनरूपोमृषा, ततचेतनको न तथातिहिंनोभा ॥३॥

श्लोकः ।

सखे धन्याः केचित् त्रुटितभवबन्धव्यतिकरा, वनान्ते चित्तान्तर्विषमविषयाशीविषगताः । शरच्चन्द्रज्योत्स्नाधवलगगनाभोगसुभगां, नयन्ते ये रात्रिं सुकृतचयचित्तैकशरणाः ॥ ९८ ॥

पुनः सवैया ।

नित पुण्यपरायण जाँचित केवल ताँभय बंध हन्यो गन है । मनपन्नगक्रूर मँझार अहंविष मूल सने जु तिनेहन है ॥ वरशारद चंद्रकी चाँदनीसों यहिव्यो मतलो उजलो वन है वस जोवनमैं अस रैन बितावत जो वनमैं जन सो धन है ।

श्लोकः ।

मही रम्या शय्या विपुलमुपधानं भुजलता,

वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोऽयमनि-
लः। स्फुरद्दीपश्चन्द्रो विरतिवनितासंगमु-
दितः, सुखं शान्तः शेते मुनिरतनुभूति-
र्नृप इव ॥ ८९ ॥

पुनः सवैया।

शुचिचारुघनीक्षितिसेजबनी मृदुद्वैभुजबेलविशाल
सिरानो । सियरोगतिमंदसुगंधवहेयहिवातअहै
व्यजनोखवितानो। विधु दीपलसे तपतादि ग्रसेशुद्ध
बुद्धिबधूमिलमोदमहानो। मुनिशांतस्वरूपअनूपवि-
भूतिसों भूपति के सम सोवत मानो ॥ ५ ॥

श्लोकः।

चाण्डालः किमयं द्विजातिरथवा शूद्रोऽथ
किं तापसः, किंवा तत्त्वनिवेशपेशलमति-
र्योगीश्वरः कोऽपि किम्। इत्युत्पन्नविकल्प-
जल्पमुखरैः संभाष्यमाणा जनैर्न क्रुद्धाः

पथि नैव तुष्टमनसो यान्ति स्वयं योगिनः ॥ ६० ॥

पुनः कवित्त ।

कहाँ ए चंडाल जात मगमो द्विजाति किधों,
कैधों कोऊ शूद्र है कि चोर वा तपेश है ।
तत्त्वके प्रवेशमैं प्रवीन मतिमान उत,
उत्तम योगेशको न चीनें कौन वेष है ॥
इतिविधि कर जो संभाषमाण जननके,
मुखोंकर संभव विकलप अशेष है ।
सुनें गुनें मुनि ताहिं वर शाप देत नाहिं,
जाहिं सुखी पंथमाहिं जैसे नक्षत्रेश है ॥ ६ ॥

श्लोकः ।

प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणे संयमः सत्यवाक्यं, कालेशक्त्या प्रदानं युवतिजन-कथा मूकभावः परेषाम् । तृष्णास्रोतोवि-भङ्गो गुरुषु च विनयः सर्वभूतानुकम्पा,

सामान्यः सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिःश्रेयसा-
मेष पन्थाः ॥ ६१ ॥

पुनःकवित्त ।

हिंसा नाहिं करे परद्रव्य को न हरे सत्य,
वचन उचारे पुण्यसमे पुण्य कर है ।
यथावित्त कथा परनारों की न भनें सुनें,
तातें गुंग बोला बने भोलासम चर है ॥
तृष्णा को प्रवाह भंग गुरों विष नम्र अंग,
मित्रभाव सभसंग करे हर हर है ।
गायो सबग्रंथन में संत ऐसे पंथन में,
राग द्वेष मोख चरे जैसे दिनकर है ॥ ७ ॥

श्लोकः ।

पाणिः पात्रं पवित्रं भ्रमणपरिगतं भैक्ष-
मक्षय्यमन्नं, विस्तीर्णं वस्त्रमाशादशकम-
पमलं तल्पमस्वल्पमुर्वी । येषां निःसंग-
ताङ्गीकरणपरिणतिः स्वात्मसंतोषिणस्ते,

धन्याः संन्यस्तदैन्यव्यतिकरनिकराःकर्म निर्मूलयन्ति ॥ ६२ ॥

पुनः कवित्त

पाणिपात्रपै पवित्र भिक्षा अन्न अक्षै त्रित्र,
द्वारे द्वारे भ्रमे मिले गिले निरदोष है ।
दशोदिशा चैल विसतीरण अमैल पुनि,
तलप अनंताकी अनंत सुखघोष है ॥
करमाको मूल मूलाविद्या निरमूल जाकी,
दीनता निवारी सारी स्वातम संतोष है ।
भेदाभेद भ्रम भागो ब्रह्मवित वीतरागो,
मान अपमानते न उदे मोद रोष है ॥ ८ ॥

श्लोकः ।

कौपीनं शतखण्डजर्जरतरं कन्थापुनस्तादृशी, निश्चिन्तं सुखसाध्यभैक्ष्यमशनं शय्या श्मशाने वने । मित्रामित्रसमानतातिविमला चिन्ताऽथ शून्यालये,

ध्वस्ताशेषमदप्रमादमुदितो योगी सुखं तिष्ठति ॥ ६३ ॥

पुनः गीयामालती छंद ।

शतखंडछीण कुपीन जांकी तासुसम जिहिं गोदरी ।
सुखसाध्यभि च्छा हार शय्या वन मसाने गिरिदरी ॥
पिख शत्रु मित्र समान मुख द्युति शून्यसदनोंमें सदा
निर्मल निजातमको भजें सुस्वरूपते जन सर्वदा॥६॥

दोहा ।

चरहिं स्वतंत्र निरंकुशे, सप्रमोद मद नष्ट ॥
अधिष्ठान सुप्रबोध कर, कल्पित नष्ट समष्ट ॥ १० ॥

श्लोकः ।

आसंसारं त्रिभुवनमिदं चिन्वतां तात ता-
दृङ्नैवास्माकं नयनपदवीं श्रोत्रवर्त्मागतो
वा । योऽयं धत्ते विषयकरिणीगाढरूढा-
भिमानः, क्षीबस्यान्तःकरणकरिणः संय-
मालानलीलाम् ॥ ६४ ॥

पुनः ललित छंद

तीन भुवनमय सर्व सरगको आसमंतमैं ढूंढ्यो ताता ॥
कहूं न देखा सुना कहूं नहिंऐसोजनजोजन्यो विधाता
जनकोअंतःकरणकरीसमाविषयरूपकरिणीमिलराता।
संयमसंगलतिहिंपगमैंजिहिंडारयोलीलाकरभोभ्राता

दोहा ।

सुषुपतिवत जाग्रतविषे, तजे त्रिधा जिहि भोग ॥
ऐसो इंद्रियजीत जन, कोइक सुस्थित होग ॥१२॥

श्लोकः ।

शय्या शैलशिला गृहं गिरिगुहा वस्त्रं त-
रूणां त्वचः, सारङ्गाः सुहृदो ननु क्षिति-
रुहां वृत्तिः फलैः कोमलैः । येषां नैर्झरम-
म्बुपानमुचितं रत्यैच विद्याङ्गना, मन्ये ते
परमेश्वराः शिरसि यैर्बद्धो न सेवा-
ञ्जलिः ॥ ६५ ॥

नील छंद ।

शैलशिला सिहजा गिरिकंदर मंदिर हैं ।
वृक्षनके छिलके पटवा दिग अंबर है ॥

मित्र कुरंगसमूह सही तिनसंग चरे ।
कोमल पुण्यफलनी फलोंकर प्राण धरे ॥ १३ ॥
शीतल स्वेच्छित स्वेच्छ सुगंधित मिष्ट घना ।
उचित अंबु गिरिदनको अचते जु जना ॥
ब्रह्मविचारवती सुमती युवतीको सदा ।
धार हृदेमहिं मोदलहैं न तजें सुकदा ॥ १४ ॥
जो निजप्राणन त्राणके कारण पाणि विवे ।
जोर नमों शिरसों न करें कहुं अग्र कवे ॥
जो इति रीति पुमान विराजत लोकविखे ।
मानत ता परमेश्वर में सुन जीव सखे ॥ १५ ॥

श्लोकः ।

क्वचिद्भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यङ्कशा-
यनं, क्वाचिच्छाकाहारः क्वचिदपि चशा-
ल्योदनरुचिः । क्वचित्कन्थाधारी क्वचि-
दपि च दिव्याम्बरधरो; मनस्वी कार्यार्थी
न गणयति दुःखं न च सुखम् ॥ ६६ ॥

पुनः कवित्त ।

कभी भूमिआसन सिंहासनपै वास कभी,
कभी भिस ग्रास कभी व्यंजन अहार है ।
कभी शतखंडवती गोदरीको ओढे जती,
अंबरको कबहूँ दिगंबर को धार है ॥
कभी भानुकर तपे कभी शशि छत्र दिपे,
कहूँ सतकारहोत कहूँ त्रिसकार है ।
तदपि न संतजन सुखी दुखी होत मन,
आतमा असंग लखे देहको विहार है ॥ १६ ॥

दोहा ।

क्रिया स्वप्न प्रतिबिंबते, बिंब प्रबुद्ध अरंग ।
तथा त्रिधाकृत कालत्रय, जीवनमुक्त असंग ॥१७॥

श्लोकः ।

भिक्षाशी जनमध्यसंगरहितः स्वायत्तचेष्टः सदा, दानादानविरक्तमार्गनिरतः कश्चित्तपस्वी स्थितः । रथ्याक्षीणविशीर्णजीर्णवसनैः संप्राप्तकन्थासखो, निर्मानो

निरहंकृतिः शमसुखाभोगैकबद्धस्पृहः ६७।

पुनः कवित्त।

जांच जांच अन्न खातो आन देन लेन घातो,
नीचजन संग हातो स्वते आतो जातो है।
विचरे अलग मगमाहिं नाहिं जग माहिं;
कहूसों विरोध नातो बोधसिंधु नातो है॥
गली गली माहिं बीन गली गली टली लीन,
ताको कंथा सीता पीन खीन सीता वातो है॥
अहंकृति वृत्ति रातो नाहिं निरमान गातो,
जाको मनमीन ब्रह्मानंद सिंधु मातो है॥ १८॥

दोहा।

चितसों मिल चितसो भयो, जिहँ चित तज निजबान
अस जीवनमुकते पुरुष, नाहिं मुक्ते जग जान॥ १६॥

श्लोकः।

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णा-
तरङ्गाकुला, रागग्राहवती वितर्कविहगा
धैर्यद्रुमध्वंसिनी। मोहावर्त्तसुदुस्तराऽतिः

गहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी तस्याः पार-
गता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगी-
श्वराः ॥ ६८ ॥

पुनः कवित्त ।

आश नाम सरी मनोराजनीरभरी करी,
तृषणातरंगो खरी व्याकुली गंभीर है ।
धीरजको तरुहारी बुद्धि नावको निवारी,
भवसिंधुगतिवारी विपता समीर है ॥
मदनादि खगभीर राग द्वेष ग्राह गीर,
मोहचक्र याको नीर जारे बांको सीर है ।
ऊंचे चिंतातटी जाते तरनी कठिन ताते,
भोगी तामैं बहें योगी बहें पार तीर है ॥ २० ॥

सोरठा ।

सुखस्वरूप ते साधु, निकल गए तिहिं सरितमो ।
आशानदी अगाध, निकल लए जन इतर गए ॥ २१ ॥

श्लोकः ।

न भिक्षादुष्प्रापापाथि पथि मठारामसरिताः,
फलैः संपूर्णा भूर्विटपिमृगचर्मापि वसनम् ।
सुखे वा दुःखे वा सदृशपरिपाकः खलु तदा,
त्रिनेत्रं कस्त्यक्त्वा धनलवमदान्धं प्रणमति ॥ ६६ ॥

पुनः नाराच छंद ।

पथे पथे न भीख कष्टसाथ हाथपे परे ।
मठे मसान बाग किं युगांतआगसों जरें ॥
समूह भूमिपै फली फलें कहा न दें फलें ।
मृगानके मृगान किं न शीतवातको दलें ॥ २२ ॥
इसो समाज आजलौ विराजमान है सभी ।
इने हुते त्रिनेत्रको महानधी तजे कभी ॥
पुना कवे भजे धनं कणी मदांधजंतुको ।
वसे इने वने भजे निजातमा अनंतको ॥ २३ ॥
समान पापपुण्यके विपाक दुःखसुखको ।

सुखे चरे बने न राग द्वेष यों विदुःखको ॥
इसे पुमानलोकमैं अशोक कोइके कहूँ ।
विलोक हैं अनेकको जु ब्रह्मरूप एक हूं ॥ २४ ॥

श्लोकः ।

महादेवो देवः सरिदपि च सैवामरसरित्,
गुहा एवागारं वसनमपि ता एव हरितः।
सुहृद्वा कालोऽयं व्रतमिदमदैन्यव्रतमिदं
कियद्वा वक्ष्यामो वटविटप एवास्तु दयिता ॥ ७० ॥

पुनः कवित्त ।

देव एक महादेव नदी देवनदी सेव,
गिरिगुहा धाम एव चीर दिशा चार हैं ।
एह काल मित्र नीको ब्रत निरदीनताको,
संग बुद्धियुवतीको प्रिया बटडार हैं ॥
सुता निरवैरता कुमार ब्रह्मको विचार,
और कहा भनों याको बन्यो या अचार है ।

ऐसे सदाचार परिवारकर जोऊ नर,
सदा परवार्‍यो सदा ताहिको जुहार है ॥ २५ ॥

श्लोकः ।

भिक्षाहारमदैन्यमप्रतिहतं भीतिच्छिदं सर्वदा, दुर्मात्सर्यमदाभिमानमथनं दुःखौघविध्वंसनम् । सर्वत्रान्वहमप्रयत्नसुलभं साधुप्रियं पावनं शम्भोः सत्रमवार्यमक्षयनिधिं शंसन्ति योगीश्वराः ॥ ७१ ॥

पुनः कवित्त ।

भिक्षा हर्‍यो अन्न गुणगणोंके संपन्न अक्षै,
निधि अयतन लाभ दीनता अभाव है ।
दुरमतसर त्रास मद अभिमान आश,
हने दुःखराशिसने जने शांतिभाव है ।
नाहिं प्रतिहत है सकलकाल सत है ।
अखिलदेशगत है महेशयज्ञ गाव है ।
हिंसा बाध निरोपाध भनत प्रशंसा साधु,
मुख्य मोक्षसाधनमों साधनको भाव है ॥ २६ ॥

दोहा ।

शमदमादिके पुष्टिहित, गर्वहतार्थ सप्रीत ।
गहे सिद्ध परमार्थहित, भिक्षाअन्न अतीत ॥ २७ ॥

श्लोकः ।

पाणिं पात्रयतां निसर्गशुचिना भैक्ष्येण संतुष्यतां, यत्र क्वापि निषीदतां बहुतृणं विश्वं मुहुः पश्यताम् । अत्यागेऽपि तनोरखण्डपरमानन्दावबोधस्पृहां, मर्त्यः कोऽपि शिवप्रसादसुलभां संपत्स्यते योगिनाम ७२

पुनः कवित्त ।

परे पाणिपात्रपै स्वभाविक पवित्र भिक्षा,
तासों प्राणरक्षा करें जहाँ चहे बहे हैं ।
बारवार विश्वको निहार तृणभारवत,
करे त्रिसकार सदाचारमाहिं रहे हैं ॥
तनके अत्यागलग शुभमग लग रहे,
दहे जीवभावको स्वभाव ब्रह्म गहे हैं ।

ऐसी दैवी संपदा न लहे दैवदयाविन,
ईशकृपाते अनीश निजरूप लहे हैं ॥ २८ ॥

श्लोकः ।

स्थितिः पुण्यारण्ये सह परिचयो हन्त हरिणैः, फलैर्मेध्या वृत्तिः प्रतिनदि च तल्पानि दृषदः । इतीयं सामग्री भवति हरभक्तिं स्पृहयतां, वनं वा गेहं वा सदृशमुपशान्तैकमनसाम् ॥ ७३॥

पुनः कवित्त ।

शुचि वनोंके निवासी मृगोंसंग हाँसी खेल,
मेल दासदासीको न मेधफलआशी है, ।
कभी प्रतिनदीतट कभी शमशाने मठ,
कबहूँ पखान वट तरुतरे वासी हैं ॥
केवल प्रसन्नमन तुल्य आयतन वन,
तदपि एकांतघनवासी सुखराशी हैं ।
ईशके उपासीकी प्रकाशी या विभूति ताहिं,

गावें सुनें ध्यावें नाहिं पावें यमपाशी हैं॥ २६॥

दोहा।

भरतशतकवैरागको, इति षष्ठो अध्याय॥
सुजनोंके गुणगण भेन, हरीघाल शिर नाय॥ ६॥

दोहा।

सतें तीन भूपानसौं, भयो पृथक संवाद।
तिनें शलोक भने तिनें, हनें मोह गर्वाद॥ १॥

सोरठा।

विन रुचि कहूँ नरेंद्र, दीन भरत प्रतिभोग कछु
तत अलीन नाथेंद्र, तीनहेतुकर चीन अप॥ २॥
राजअंशसम्म रक्त. भोग योग न विरक्तको॥
दानरक्त विन भक्ति, तव मम सम पद हेतुत्रय॥ ३॥

श्लोकः।

त्वं राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभिमा-
नोन्नताः, ख्यातस्त्वं विभवैर्यशांसि कवयो
दिक्षु प्रतन्वन्ति नः। इत्थं मानद
नातिदूरमुभयोरप्यावयोरन्तरं, यद्यस्मासु

पराङ्मुखोऽसि वयमप्येकान्ततो निस्पृ-
हाः ॥ ७४ ॥

दोहा ।

त्वं राजा राजा अहं, अधिक भेद कछु नाहिं ॥
तुमु चतुर्विध चमूकर, करो गर्व मनमाहिं ॥ ४ ॥
मन बुधि चित्त अहं चतुर, सेना प्रवल प्रवीन ॥
लब्ध गुरोंकी सेवकर हम उन्नत इत पीन ॥ ५ ॥
वहुप्रकारके धनोंकर, तुम प्रसिद्ध जगमाहिं ॥
हम निज निर्मलगुणोंकर, प्रगट दशोदिशि आहिं ६
वीच पुस्तकों कविजनों, गाये हमरो गीत ॥
भो भूपति संसारमें, मैं प्रसिद्ध इतिरीत ॥ ७ ॥
भूके कोटि विभाग कर, कणलवांश तिहिं पाय
ताकर त्वं उन्नत भयो, रुचिविहीन दर्शाय ॥ ८ ॥
बोध निजातमराजका, हम गर्वत उरमाहिं ॥
नाहिं करें हम चाहि तव, हे मानद नरनाह ॥ ९ ॥
ईश्वरअंश अतिथी लख, मानहानि अघ होग ॥
हमकर तुम इत त्रितय विध, मानदानके योग ॥ १० ॥

सोरठा ।

याचकादिकर भूप, मानदानके योग्य तुम ॥
त्यों हमते तव ऊप, होत न समता भावते ॥ ११ ॥

दोहा ।

किंचित तव मम सामता, बाह्यगुणोंकर चीन ॥
राजांतरमों अंतरों, हम अदीन तुम दीन ॥१२॥
यथालाभसंतुष्ट हम, निजानंदमों लीन ॥
इतउतके सुखसों अहित, याविधि अहं अदीन ।१३।
मदन मदादि क्लेश, शोक लोकपरलोकके ॥
ताकर दुखी हमेश, त्वं नरेश है दीन इमि ॥ १४॥
जग जीवन दिन चार, तज मद स्वेच्छित संचरो ॥
सभजन हरिअवतार, करो मित्रता सर्वसह ॥१५॥

दोहा ।

गहे पाद योगीशके, नमो दंडइव कीन ॥
आयसु पाय स्वदेश नृप, गयो मुदित मदहीन ॥१६॥
वचन नाथके धार उर, डार गर्व संताप ॥
भूप अभय विचरत भयो, वृथा न साधुमिलाप ॥१७॥

अमृतवचनकी वृष्टि कर, कृपादृष्टिके साथ ॥
गर्वताप नरनाथको, हरचो नाथके नाथ ॥ १८ ॥

पुनः दोहा ।

श्रीहरिभरत यतींद्रप्रति, अमुक नरेंद्रोवाच ॥
चिंतामणिसम राज तज, कत दरिद्रमों राच ॥१९॥
सम मुदिता निर्दीनता, निर्भयसहित विचार ॥
कीर्ती करत दरिद्रकी, ताप्रति भरत उदार ॥ २० ॥

श्लोकः ।

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं च लक्ष्म्या,
सममिह परितोषो निर्विशेषावशेषः ।
स तु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला,
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः ७५

चौपाई ।

वल्कलकर हुलास है हमको । बहुलक्ष्मीकर मोद सु
तुमको । मैं प्रसन्न सक शागादहिं । त्वं प्रसीद बहुविं-
जनस्वादहिं ॥ वयं हर्ष क्षितिशिलाशयनकर । यूयं
तुष्ट द्विरदरदखटपर ॥ शांतित्रिणायुत मम संतोषा ।

सुंदरनारिनकर तव पोषा २२ नृपातेतृक्षितायोजन-
ग्रामहिं । किंचिततारतम्यनाहिंतामाहिं पुनःदरिद्री
भवतु वहीनर । हृदयजासु सुप्रकाशआशतर ॥ भू-
पति चित्त प्रतुष्टे जबहीं । को धनवंत रंक को तबहीं ॥
मो मन अब संतुष्टभयो अति) नाहिंदरिद्री धनी
निहारति भेदभाव सगरो अब नाश्यो । एक ब्रह्म
उरमाहिं प्रकाश्यो ॥ परमानंद ब्रह्ममैं जोरा । परमा-
नंद भयो मन मोरा ॥२५॥ ब्रह्माकार भयो मन जाते ।
ब्रह्माकार लखें भव ताते ॥ तुम जु कह्योनृपमोहिं
दरिद्री । कवन युक्ति इनमैंतुमअद्री । देख दिगंबर काय
बिवर्णा । मोहिं दरिद्री तोहिं जु वर्णा ॥ देकर तोते
अधिक समाजा । लियो दरिद्र मोल मैं राजा २७
जासु प्रताप निजातम शोधा । भये निरस्त समस्त-
विरोधा । जा समयांकर हे नरराई । मैं अब सिद्धअ-
वस्था पाई २८ अविलोकों मैं लोक सबाया । मोहिं
न हेरत को क्षितिराया । द्विधाप्रकार दरिद्र बखाना ।
एक सतोमय तममय आना । मनकर तनकर भोग

असंग्रह । यहि वरिष्ठ दारिद्र मोरगृह ॥ हरिगुरु-
भक्ति कृपादित्याग जहँ । सो कनिष्ठ दारिद्रतोरमहँ
चाहिआहिमनमाहिंजाहिंआति । सोपिदरिद्री तुमवत
नरपति । तुच्छसदुःख विनाशी संपत । पाय वृथा
नृप त्वंकतगर्वत ॥

दोहा ।

मौन धरो निजभौनको; करो गौन भूपाल ।
तृष्णा चित्त विशाल जिहि, वही परम कंगाल ॥३२॥
ज्यों रवि भास निशांतमें, शांति अवश उतपन्न ॥
त्यौं नृप उर धर भरतरव, भयो ज्ञानसंपन्न ॥ ३३॥
अतिवर्षा जल भरतरव, नृपउर ऊषर गाय ॥
तायुत तिहिं वित जलजभव, गयो नमो कर राय ॥३४

पुनः दोहा ।

मम आयन पावन करो, पावन-पावन-पाय ॥
वक्ता नृपवत राज निज, निर्भय ताप्राति गाय ॥३५॥

श्लोकः ।

अर्थानामीशिषे त्वं वयमपि च गिरामी-

श्महे यावदित्थं, शूरस्त्वं वाग्मिदर्पज्वर-
शमनविधावक्षयं पाटवं नः । सेवन्ते त्वां
धनान्धा मतिमलहतये मामपि श्रोतुका-
माः, मय्यप्यास्था न चेत्तत्त्वयि मम
सुतरामेष राजन् गतोऽस्मि ॥ ७६ ॥

कवित्त ।

विभवोंके ईश तुम वागमके ईश हम,
भूपति भवान शूर बीर हम अति हैं ।
परप्राणीमाहिं मद ताप तासु नाशिबे को,
मम गिरा चल चतुराई को धरति है ॥
सेवत धनांधे तोकों पूजत हैं श्रोते मोकों,
मतिमलहतहेतु लेत मोते मति हैं ।
रावरो हमारो राज गुणाक समाजसम,
अंतरके राजमाहिं अंतरो महति हैं ॥ ३६ ॥

टीका चौपाई ।

राजन तुम पृथिवीपतिराजे । हम राजे त्रिभुवनके
साजे ॥ लाजें तुम्हरे धाम विराजें । देख दोष बहु

ताते भाजें ॥ ३७ ॥ बुद्धिबेलिके हरनेहारी । अंश
तुम्हारी कठिन कुठारी ॥ छलदमैलमूत्रादित्यागसम ।
तजे पदारथनाहिंग्रहेंहम ३८ हम निशप्रेहीचरहिं स्व-
तंतर । दुसह दुःखमम सुखपरतंतर ॥ मैं आनंदी नि-
जानंदकर । विषयभोगसुखके तुम किंकर ॥ ३९ ॥
करो दंड तुम दुष्ट जनाको । सहि न सकों मैं दुःख-
मोताको । तुमडाटोतिहिंमुक्तिचहेंहम । तव मम
संगति तुल्यतेजतम । महत राजवारे हम राजन ।
स्वल्प राज तव सोममकाजन । तुम्हरे सदन सदौरप
पौरे । सहि न सकों मैं वायक कौरे । तव निकेत
इत्यादिक दूषण । सो मम योग्य न भोभूषण । नमो
मात्र जोभूपतिहारी । हमताके भी नहिं अधिकारी ॥
तव आलय तन पाले लजें । जाते हम तुम दोनों
राजें ॥ ताते हमरे तुमरे माहिं । हे नृप अधिक अं-
तरो नाहिं ॥४३॥ राजांतरमो आहि विषमता ।
बाह्यराजगुणकी कछु समता । असुरी संपत्के पति
तुमहुं । सुरी संपदा के प्रभुहमहूं ॥ ४४ ॥ तुम

स्वदेशके अर्थोंके पति। रंक धनीकी करो विषम गति। हम वाणीपति निजवाणीकर। करहिं तारतम तुम समनरवर। निज प्रजारिके अरि तुम वीरा। बल विख्यात रावरो वीरा। निज विभागके हरणे काजा। रक्षक तुम लोकन के राजा॥ बाहिर धन के हरता तस्कर। ताके दंडक तुम भूपतिवर॥ अर तव मन दुश्मन तव अंतर। तुम्हरे बलको हरत निरंतर। ब्रह्म सच्चिदानंद रूप तव। ढाँप लियोतिहिं यथा अभ्र रवि॥ मृषा अचेतन दुःखरूप तन। अर परिणामी विपताबासन। तामें अहंभाव तव कीनों नखशिखाग्रलौं निजवपु चीनो। अज असंगलौंधर्म तुम्हारे। चित्तशत्रु ते ढापे सारे।४९। जन्ममरणलौं तनके कर्मा। चीनें तुम अपने परधर्मा॥ निजानंदते तुमको तोरे। नीच विषयसुखबीच सुजोरे।५०। काम क्रोधलोभादिरूपधिर। नटवत मोहे तुमकों मनअरि तुम्हरे सुखको अहनिशि काटे। सतपथते तुमको नितडाटे॥ कीन दीनते दीन तुमहिं मन। जन्मजन्म

को मनतत्वदुशमन। तव आश्रय बल पाय तिहारो। हरयो सर्व मन तेज तुम्हारो। तुम्हरे बलको जब मन धारे। तबे शुभाशुभपंथ पधारे॥ तब बल अते किते न सिधारे। जडस्वभावते बाणप्रकारे॥ जबलग तुम्हारो मन अरि जीता। तबलगलवसुखलहोनभीता जब तुम चित्तशत्रु निज जीता। तबमोसमतुमचरो अभीता। मनरिपु जीता सब रिपु जीते। मनरिपु जीतासब रिपुजीते। इतर तनों में होइ न निग्रह। मानसको विन मानस निग्रह। ताते स्वांतरमनवशि कीजे। निर्भयपद शूरनको लीजै॥ मदनमदादिशत्रु भक्ताके। हर्हिं मोक्षसुख अरिहमताके वायक सायककर तिहिहनके। शमदमादिजनकेमनजनके त्रिधा तापते ताको राखहिं। तेनिजज्ञान पायमैंना खहिं। भूपपुनासमसूरशूरहम। गिराकिरणकरहराहिं सुभ्रमतम॥ रागद्वेषको मदज्वर भारी। ताकरजरत सर्व तनधारी॥ ममवचनौषधि कोजनजबहीं। संयम

संयुत सेवहिंकवहीं हेतुसमेत प्रहार ताप सब। लहत निरतिशयनिजानंदतव। अरुतृष्णाकर बौरेजे नर गहें मानविन धनकणिका खर तन पोषत योषित भोगार्थ। ते नलखाहिं पशुवत परमार्थ॥ अस पामर तव सेवत राजन। सेवहिं मोहिं मोक्ष के भाजन। निज मतिकीमलहतिकेकाजा।सुनते वचनसरुचिममराजा अर सह कामी भोगनिमित्ता। अरचहिंमोहिं जवेइक चित्ता। प्रगटे जेतिहिंपुण्यविशेषा। तेपि तजहिंनिज निखिलकलेशा॥ सुखदसुखेन शीघ्रबहुभोगा। करे गिराभम ताजनयोगा॥ चपलचित्तमहि वचनबसहि मम। करहिंतिसेतबअचल २ सम॥ अचलनिजात मसुखभुक्तावत। भोक्ताचित्त अचलता पावत। ब्रह्मा कारभयो मनजाते। भोग्योगयो आप खलुताते॥ पूरबचपलरूपनिजखोयो। चितसों मिलचिताचित सोहोयो॥ चितचितनामसजाती जाते। भवतअभेद उभयचिततांते। अचल निजातमसुखकीदानी। ताते अचलचतुरममवानी॥ जहाँ संचरेगिराहमारी। करे

तिस तव निजअनुसारी ॥ ताते वाक्य हमारे राजन
जन श्रद्धालू के अतिसाजन ॥ ममवचनोंपरतवश्रद्धा
जब । धरोतबै उर ताप हरो सब ॥ सर्वजनोंके हित
कीकिजे । निर्भयदान सकलको दीजे ॥ यशकोतिल
कधारजगजीजे । मानसदेहसफलकरलीजे ॥६८॥

दोहा ।

हरहु दुःखी दुःखको, सुखिये को सुख देह ।
धरो शिरोमणि वचन मम, रमो नरो मणिगेह६९
मान हान भूपानको, कीन सप्तमेऽध्याय ।
अनुज वृद्ध भ्रातानके, धस्यो मध्यमोऽध्याय ॥७॥

दोहा ।

अष्ट अष्ट श्लोक कर, नृपन गर्व संताप ।
अतभृतवचनचूरणसहित, चूरण करहिं कलाप॥१॥

श्लोकः ।

विमलहृदयै र्धन्यैः कैश्चिज्जगज्जनितं पुरा,
विधृतमपरैर्दत्तं चान्यैर्विजित्य तृणं यथा ।
इह हि भुवनान्यन्ये वीराश्चतुर्दश भुञ्जते,

कतिपयपुरस्वाम्ये पुंसां क एष मद-
ज्वरः ॥ ७६ ॥

चौपाई

कछुकपुरनको होकरराजा। यामदज्वरनर करत अकाजा ॥ विमलचित्त जनके चितधने। पूर्व सुज गत जिनहुँनेजने ॥ कमलासनते आदि महावर। गर्व करहिं बनहै नकरयोपर। जगत अनंत अनंत फणोंपै धऱ्यो अनंत नगर्व कऱ्योपै ॥ परशुराम ते आदिप्रवीनों। जिनभवको तृणवततजदीनों ॥ इंद्रा दिक पुनिअपरजुधीधर। याजनलोकविषेअतिशय वर। चौदशभुवनराजकिलभुंजत। स्वपनेहूं मदज्वर नहिंरंजत॥ मंदभाग्यजे आदिरंक नर। तेजडनवधन सुरापानकर ॥ बंधमुक्तिविधि लखे न अंधे। कनक वधूके सुखमें बंधे॥ अविनयवानपरमअभिमानी। व्याकुलइंद्रियबुद्धिबिहानी। किंचितसंपातिपायदुष्ट जन। करहिंगर्वअतितुच्छकृपणमन। खान पानगृह वसननके हित। चहों खलोंतेमैंनकदाचित। भिसवर

के भोजनकरहमअल। अचनअर्थअलमधुरगंगजल शयनहेत मम बस बसुधातल। चीरदिगंबरवल्कल करअल। कलुपुरपाति अरुनवधनपाए। अधिपति धनपति जेगर्वाए। ताते याचनको दुख जोऊ। मैं न महारसको अवसोऊ॥

दोहा।

मुक्तिभुक्तिसंयुक्त हर, भजों परन फल खाय॥
पर न दुर्जनों के घरन, देहिशब्द कहुँ जाय॥ १०॥

श्लोकः।

स्वादिष्ठं मधुनो घृतादिरसवद्या प्रस्रव-त्यच्तरं, देवी वागमृतात्मनो रसवतस्तैने-व तृप्ता वयम्। कुक्तौ यावदमी भवान्ति धृतये भिक्ताहृताः सक्तवः। तावद्दास्यकृ-तार्जनैर्नहि धनैर्भोगान् समीहामहे॥७७॥

पुनः चौपाई।

फलफूलादिशाकसतवावर। यहि जो ल्यावेंहमभि-क्ताकर॥ अचवों तिहिं सुरसरिजलपीके। शांतकरों जठरागानिनीके॥ तापचित्तकोहरे जापहर। लहों

निजातम साधुसंग कर ॥ सुधास्वरूप ब्रह्मवित वेदी। चिद्जडग्रंथि समूलप्रभेदी ॥ वाणी जाहिं भवानी के सम। स्रवति सुधांक अहंब्रह्मासम ॥ सर्वगिराते ऊतम वानी। जाके गहे सर्व दुखहानी ॥ १३ ॥ मधुते क्षीर खांड घृतरसज्यों। स्वादुवंत अतिसंतशब्दत्यों ॥ गिरातिनहुँकीश्रवणमननकर। तृप्तभवातिममचित्त निरंतर जबलगइमिममसद्गुणवंतन। तबलगधन हित भजों न भूपन ॥ भ्रुकुटीनैन वैन मुख उरकर भ्रमत सर्वदाद्रव्यगर्वकर ॥ शिश्नोदरपर धर्मविहीने पथ परमार्थ परार्थ न चीने ॥ तापदाति है ताते वित्ता। करो न संग्रह भोगनिमित्ता ॥ १६ ॥ ताहिं पामरोंते जन पामर। चा.हितद्रविणहिंसहितअना-दर। मणीफणीकेशिरकी जैसे। जोजाँचेसोबाचेकैसे ॥ १७॥ विषयभोगके हित वांछे वित। धनके हेत धनाढाहिं बाछत ॥ ताते विषयमोह मैं छौरा। धन धनाढ्य सो काम न मोरा ॥

दोहा ।

तनरक्षा भिक्षाकरे, गुरुशिक्षा उरपोष ।
भोग भूप धन मोक्ष रिपु, मोक्ष करे हित मोक्ष॥१६

श्लोकः ।

दुराराध्यः स्वामी तुरगचलचित्ताः क्षितिभुजो, वयं च स्थूलेच्छा महति च पदे बद्धमनसः । जरा देहं मृत्युर्हरति सकलं जीवितमिदं सखे नान्यच्छ्रेयो जगति विदुषोऽन्यत्र तपसः ॥७८॥

पुनः कवित्त

तजे दुराराध्य स्वामी कृपण कुमगगामी,
वाजिवत चलचित्त भूपनके भानिये ।
ताते मे सथूल चाहि पुरी होति नाहिं ताते,
लायो मन ताहि माहिं पद जो महानिये ॥
जराहरे कायहरे कालसमुदाय प्राण,
ताते तप करों सखे विदुषो बखानिये ।

तपविना ज्ञानमग श्रेयको न मध्य जग,
तप नाम चित्तकी एकाग्रता को जानिये ॥२०॥

श्लोकः ।

पुरा विद्वत्ताऽऽसीदुपशमवतां क्लेशहतये,
गता कालेनासौ विषयसुखसिद्धयै विष-
यिणाम् । इदानीं संप्रेक्ष्य क्षितितलभुजः
शास्त्रविमुखानहो कष्टं सापि प्रतिदिनम-
धोऽधः प्रविशति ॥७६॥

पुनः सवैया ।

श्रुतिबोध विरोधनिवारणकारण, प्राकहुतीसुसखा
सज्जनाको कछु कालगयेरसि आनदयेसुख, भोग
विलासनिमित्त धनाको ॥ अतिखेद सुविद्याअविद्या
भई, अबमोक्षन भोगजनेंपुरुषाको ॥ प्रति वासर
जातअधेतिअधे, खलवेदाविरुद्धविलोकनृपांको ॥२१

पुनःटीका चौपाई ।

पुरामातवत थी विद्वत्ता । पुरुषोंके कल्याणनिमित्ता
सुजनो पढ़े मुक्तिहित वेदा । तिनहुँजन्योतिनउरनि-

वेंदा॥स्वारथ सिद्धारथवैरागहिं। जन्योविवेकसखा तिहिंजागहिं॥युगलसखेमिलहरयोयुग्मभ्रम। ज्यों रवि दृगतमहरत विनाश्रम॥शास्त्रज्ञान इमि बंधन हर्ता। पूर्व सुभयो मुक्तिको कर्ता॥किंचित काल व्यतीतभयोजब। वही बोधजनमुग्धनको तब। विषयसुखहूकी सिद्धिनिमित्ता। होतभये क्रम करत तवित्ता॥ तिनोंजनोंजबतंत्र अधीते। करत भयेनृप श्रवणसप्रीते॥ गुरगोविप्रनि दरसनमाहीं त्रिधा अनन्य भक्ति उर जाहिं॥धर्मी सतवादी मन दाया शुभ गुण मंदिर अस नरराया॥ तातें आमनाय सुनसादर। देत द्रव्य बहु ज्यों जलबादर॥इमिभोग नकोकारण होई। अहोखेदअबविद्यासोई॥२७॥ दिन दिन अधे अधे को धावे। मुक्ति भुक्ति नहिंउभय उपावे॥यामें अवर न कारण कोऊ। क्षितितलभो क्षानृपगणहोऊ॥कृपण अभक्तमुग्ध अति पापी। दुर्मगगामीमृषाअलापी॥शास्त्रेमाहिं नाहिंरतिराई अगुण अयशानिधिअस नरराई॥सो अब विद्या

देख तिन्हों को । नाहिं भुक्तिभी देत जनों को ॥
श्रवणकरतनहिं पठत न आपहिं । कबहुं कहूं पुराय परतापहिं ॥ किंचित कथा समागम बन है । सुनत अरुचि नाहिं तामैं मन है ॥ चित्त भ्रमत भवअर्थन माहीं । कथा अर्थ कछु बूझत नाहिं ॥ अरु श्रद्धा विनजबकछुदर्वाहिं । देहिंताहिंकोतबअतिगर्वाहिं ॥ वक्ताको अनुचरवत जानें । तातेकरतनआतिसनमानें अरुवक्ताकोइच्छा जोहै । ताते तृप्त कदापि नहोहै ॥ तातेजोबुधिमानअहेजन । भूपनभवनेगमनकरेजिन

दोहा ।

निर्दूषण भूषण महा, रूखन सेवहि सोय ।
तवैं तनय विद्या जनें, भुक्ति मुक्ति शुभ दोय॥३४॥

सोरठा ।

विद्या वधू प्रसूत, शांति ध्वनी भूमेऽभवत ।
जने प्रबोध सुपूत, हने कलेश अशेष तब ॥३५॥

श्लोकः ।

अभुक्तायां यस्यां क्षणमपि न यातं नृप-
शतैर्भुवस्तस्या लाभे क इह बहुमानः

क्षितिभुजाम । तदंशस्याप्यंशे तदवयव-
लेशेऽपि पतयो, विषादे कर्त्तव्ये विदधति
जडाः प्रत्युत मुदम ॥८०॥

दोहा ।

भयो गर्व बहु नृपनको, वरणों किसम सोय ।
केवल वृथा निमित्तबिन, जडतासूचक होय॥३६॥
भई अभुक्त न निमिष अपि, भूपगणोंकर गाय ।
चगल सगल भूपानकी, ताहि पाय गर्वाय ॥३७॥
तासुअंश पुनि अंशातिहि, ताअवयव लवलेश ।
तिहिं उचिष्टके पति भये, गर्वाहिं हम दुहनेश॥३८॥
गणिकासम क्षिति बहुपती, पुनः सर्वकी जूठ ।
ताहि भोगकर भूप शठ, मुदिता धरें अनूठ ॥३९॥
परम निंद्य यह कर्मकर, पश्चात्ताप करें न ।
उलटे मद मुदिता धरें, धिक् पुरुषाधम तेन ॥४०॥
पुनि धिक धिक तिन नरनको, तिन घरन जे भाग
नमोकरन तनभरण हित, शरण विश्वभंर त्याग ४१

श्लोकः ।

गङ्गातरङ्गकणशीकरशीतलानि
विद्याधराध्युषितचारुशिलातलानि ।
स्थानानि किं हिमवतः प्रलयं गतानि
यत्सावमानपरपिण्डरता मनुष्याः ॥८१॥

पुनः सवैया ।

शुचि गंग तरंगकिबूँद कणीकरि शीतल चारु हिमा
चल कीशिल। जिहिं फूल फलादि उपान धरे शिव
को नित सेवत देववधूमिल ॥ परभोजन में निज जो
जन दे दिलता गिरिकोकत काल लयोगिल ॥ अप
मानसहीअपमानसही, विदधीरसहीनृपधामअहीबिल

श्लोकः ।

फलं स्वेच्छालभ्यं प्रतिवनमखेदं क्षिति-
रुहां पयः स्थाने स्थाने शिशिरमधुरं पुण्य-
सरिताम । मृदुस्पर्शा शय्या सुललितल-
तापल्लवमयी, सहन्ते संतापं तदपि धनिनां
द्वारि कृपणाः ॥८२॥

पुनः सवैया ।

प्रति काननन वृच्छन ते मन वांछित, लाभ सुखेन फलादि अपारा ॥ सरिता किस थान सथान विखे-शुचि शीतल मिष्ट मिले बहु वारा ॥ जलपत्रवतीमृदु सापरशी तलपादिके होवत भूपन द्वारा ॥ सटके मतिमान महा भटकेमतिमान तहांकतहोवतख्वारा॥

श्लोकः ।

किं कन्दाः कन्दरेभ्यः प्रलयमुपगता नि-र्झरा वा गिरिभ्यः, प्रध्वस्ता वा तरुभ्यः सरसफलभृतो वल्कलिन्यश्च शाखाः । वीक्ष्यन्ते यन्मुखानि प्रसभमपगतप्रश्रया-णां खलानां, दुःखोपात्ताल्पवित्तस्मयपव-नवशान्नर्तितभ्रूलतानि ॥८३॥

कवित्त ।

कंदराते कंद मूल कहा निरमूल भयो,
वारिवारे नग किधों देत हैं न वनको ।

मीठे फलोंवारी डारी तरोंकी न फल देहिं,
कैधों द्रुम देतें हैं न वलकल जनको ॥
दुःखसों मनाक धन साधके मदांध भए,
मदव्यारसाथ जो भ्रमावें भ्रलतनको ।
खलोंके कुमुखोंको सबल सो पुरुष पेसे,
अहो कैसे तजे ऐसे बन चिंतामणिको ॥४४॥

श्लोकः ।

मृत्पिण्डो जलरेखया वलयितः सर्वोऽप्ययं
नन्वणुस्तं स्वीकृत्य सदैव संयुगशतै राज्ञां
गणा भुञ्जते। ते दद्युर्ददतेऽथवा न किमपि
क्षुद्रा दरिद्रा भृशं, धिग्धिक्तान् पुरुषाध-
मान् धनकणं वाच्छन्ति तेभ्यो ऽपि ये॥८४॥

दोहा ।

वल्यो जलधिजलरेखकर, यहक्षितिमृतिकापिंड ।
भोगत ताको भूपगण, कर बहु समर प्रचंड ॥४५॥
खंडखंड कर आरिनके, पिंड शरनके संग ।
बंड बंड कर धरणि सब, भोगत भूप उमंग ॥४६॥

द्रव्यगर्वकर अंभमन, कृपण दरिद्री चुद्र ।
कुटिल कुमगगामी अधम, कामी दुःखसमुद्र ॥४७॥
तजके मति निजमानको, जे मतिमान पुमान ।
धनका कनका वाञ्छने, ताते धिक २ तान ॥४८॥
शूम धनी धनकी कनी, देहिं किधों नहिं देहिं ।
बुद्धिमानकी बुद्धिको, मानसहित हर लेहिं ॥४९॥
दाममात्र न ददामि धन, करहिं निंद अपमान ।
पुरुषप्रतिष्ठामानको, जीवन मृत्युसमान ॥५० ॥
हरके घरके भोगको, त्रिपतहिं नृपन निकेत ।
भोगप्रेतकर इमि ग्रसे, शशी राहु रवि केतु ॥५१॥
संचित अर्थ अनर्थकर, भोगत साधु जु तास ।
लेत पाप सभ आप तिहिं,देत पुण्य निजराशि ॥५२॥
भूपनसम भूपानक, भोगत भोग जु साधु ।
सो तदवत दुर्गति गहे,शमदमादिकर बाधु ॥५३॥
इत निंदा उत मंदगति, तासु भ्रष्ट विब लोक
ज्वरवतको घृतवत्त हते, शुभको नृपको ओक॥५४॥

सोरठा ।

दुग्धसाधुमनमाहिं, राजअंश कांजी मिले ।
युगल शीघ्र फट जाहिं, गहे मुमुक्षू नाहिं तिहँ॥५५॥

दोहा ।

दुहे साधु धीधेनुको, दुग्ध सुकृतसंबूह ।
अर्प भोग वासादि तिहँ; भूप गोपविधि ऊह ॥५६॥
वहुभोगोंकर पुष्ट तन; तन पुष्टे मन पुष्ट ।
मनपुष्टे मद मदनलौं, पुष्ट होत रिपु दुष्ट ॥ ५७ ॥
जन विरक्तको भूप जिन, बहुत भुगावे भोग ।
नातर साधु असाधु ह्वै, पाप भूपको होग ॥५८॥
मलिन अन्न कर मलिन मन, शुद्ध अन्न कर शुद्ध ।
जलवत चित जासों मिले,भवत तथाविधि बुद्ध॥५९॥
वरधनाढ्य सतभावकर, यजे संतको जोय ।
गंगोदकके पानसम, तृषा कुगति हत दोय ॥६०॥

सोरठा ।

ताते यथाधिकार, यजे साधुको भूपवर ।
नातर तिने धिकार, देत लेत जु विचारविन ॥६१॥

नृपधनवनुते धीर, शरके सम सरके झटित ।
पोखें चित्त शरीर, हरि भज भिक्षा अन्नकर ॥८२॥

दोहा ।

भयो भरतवैराग्यको, अलं अष्टमोऽध्याय ।
धर्मविमुख भूपानको, निंद्यो तासु मिलाय ॥८॥

दोहा ।

नवमें रविवृतकर कहें, दशा प्राक विदमान ।
सुमर सुमर गतदिननको, हँसत समाधि उथान॥१॥

श्लोकः ।

ये वर्धन्ते धनपतिपुरः प्रार्थनादुःखभाजो,
ये चाज्ञत्वं दधति विषयाक्षेपपर्यस्तबुद्धेः ।
तेषामन्तः स्फुरितहसितं वासराणां स्मरेयं, ध्यानच्छेदे शिखरिकुहरग्रावशय्यानिषण्णः ॥८५॥

पुनः कवित्त ।

गुफाके पखानपै समाधितें उत्थान पाय,
ब्रह्मध्यान सुखको मैं ध्यान कीनों आहिसे ।

बीते जे दिहारे दुखवारे ता समार हसों,
दुष्टधनीद्वारे जे भ्रमानवारे अहिसे ॥
दुःखजडताके हेतु याचनानिकेत जे थे,
भोगलाभके समेत मद देत अहिसे ।
जेई मोरी मत्त हते अब वाहि अहिगते,
अहँ बीते अहि मोर वहि अहिअहिसे ॥ २ ॥

श्लोकः ।

यदासीदज्ञानं स्मरतिमिरसंस्कारजनितं
तदा दृष्टं नारीमयमिदमशेषं जगदपि ।
इदानीमस्माकं पटुतरविवेकाञ्जनजुषा,
समीभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्म मनुते८६

पुनः वही झूलना ।

भोगसंयोग करदुष्ट अज्ञान अरि मोर उरमाहिंभयो पुष्टमाना ॥ समरके तिमिरमें संसकारोपजे सार संसारको नारिजाना बुद्धिके नैनमो ज्ञान अंजन दियो पादत्रै नैनके सेवमाना॥ भयो अब चतुर मैं लोक दश चतुर मैं । ब्रह्म को वेद कर भेद हाना ॥

श्लोकः ।

यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः सम-
भवं, तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम
मनः । यदा किंचित् किंचिद्बुधजनसका-
शादवगतं, तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव
मदो मे व्यपगतः ॥८७॥

पुनः कवित्त ।

चीनों जब किंचित करिंदयो मदांध भयो,
तबी मोहिं जानलीनो सबी ज्ञाता आपको ।
तासु मदतापके प्रताप कर मोरे मन,
माहिं कछु रह्यो नाहिं ज्ञान पुण्यपापको ॥
स्वच्छ सतसंग कीनो तब कछु कछु चीनों,
मूढ जानो आपको विहानो मद तापको ।
साधुनको मेला चारु मेले चारु साधनको,
जाहिके प्रतापकर पायों मैं निजापको ॥३॥

श्लोकः ।

इयं बाला मां प्रत्यनवरतमिन्दीवरदलप्र-
भाचौरं चक्षुः क्षिपति किमभिप्रेतमनया ।
गतो मोहोऽस्माकं स्मरकुसुमबाणव्य-
तिकरज्वलज्ज्वाला शान्ता तदपिन वरा-
की विरमति ॥ ८८ ॥

पुनः वृद्धनाराच छंद ।

सप्रीति नीच नारि ए सदीव मे निहार है ।
सरोजनीलपत्रकांत चोर चक्षु डार है ॥
इन्हे अलक्षभावको लखौ चुरात चित्त मोर ।
चोर नैनसों न मैं स्वभावको निहार है ॥
भयो विशुद्ध मोहिं चित्त मोहको निमित्त नाहिं ।
मैन फूल बानकी कृशानु को प्रहार है ।
अजीप ए छिनारनारि नारको न फेर है,
तियाक्षस्यालते न मेर चित्तशेर हार है ॥ ४ ॥

दोहा ।

नाहिं मेरुमन मेरको, दृगपतंगपर भूल ।
चपल सके कर अङ्गके, चित्त तूलके तूल ॥५॥

श्लोकः ।

रे कन्दर्प करं कदर्थयासि किं कोदण्डटङ्का-
रवै, रे रे कोकिल कोमलैः कलरवैः किं त्वं
वृथा जल्पासि । मुग्धे स्निग्धविदग्धमुग्ध-
मधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं, चेतश्चुम्बितचन्द्र-
चूडचरणाध्यानामृतं वर्तते ॥८६॥

पुनः कवित्त ।

रे रे मीनकेतु किं कसीस देत पान को,
कमानके टंकारध्वनोंसों न मन त्रस है ।
अरी मूढ पिक काको मृदु चारु वचनों को,
वृथा बकें न असाको ताको कछु रस है ॥
मुगध सनिगध विदगध मुगध लोल,
मधुर कटाक्षोंते रे कर मोको बस है ।
चंद्र चूडामणि जाँके चुभ चित्त पाउँ ताके,
बीच अमी ध्यान वाँके मेरो मन बस है ॥६॥

दोहा ।

तव पदाति थो भ्रांतिमों, भ्रम्यों गेंदकापिसान ।
चित्त शांत गत भ्रांति अब, मैं प्रभु अनुग भवान॥७॥

श्लोकः ।

महेश्वरे वा जगतामधीश्वरे, जनार्दने वा जगदन्तरात्मनि । न वस्तुभेदप्रतिपत्तिरस्ति, मे तथापि भक्तिस्तरुणेन्दुशेखरे॥९०॥

पुनः चौपाई ।

स्वारथ जंगम सभ जगता के । ईश्वर परमनाथ गिरिजाके ॥ अरु श्रीविष्णुदेव के माहीं । जामहिं कछू विषमता नाहिं ॥ सर्बात्मा सबजग के अंतर व्याप रह्यो सम एक निरंतर ॥ पुनः उमाधव माधव दोमहिं । भेदवती मीतमे महिं मानहिं ॥ तदपि सु मम भक्ती मध ताँके । तरुणशशांक शेखरे जाँके ॥ भेदे भेद जास करुणाते । मम अति भक्ति तास मैं ताँते ॥ १० ॥

श्लोकः ।

मातर्मेदिनि तात मारुत सखे तेजः सुबन्धो जल, भ्रातर्व्योम निबद्ध एष भवतामन्त्यः प्रणामाञ्जलिः । युष्मत्सङ्गवशोपजातसु-

कृतोद्रेकस्फुरन्निर्मलज्ञानापास्तसमस्तमोह-
महिमा लीये परब्रह्मणि ॥९१॥

पुनः छप्पय ।

वसुधा मात क वंधवंधु शुभ हे सखि आगे ।
तात वातवर भ्रात गगन मैं तुम सब आगे ॥
एह अंतकी नमो जोर कर करों सदीने ।
तुमरे संगप्रताप सुकृत मैं सव जु कीने ॥
तिन ज्ञान भानु निर्मलकऱ्यो, हान महातम मोह सव
मैं लीन भयो परब्रह्ममैं तुम सों रह्यो न काम अव११॥

श्लोकः ।

मातर्लक्ष्मि भजस्व कंचिदपरं मत्कांक्षिणी
मास्मभूर्भोगेभ्यः स्पृहयालवो नहि वयं
का निस्पृहाणामासि । सद्यःपूतपलाशपत्र-
पुटके पात्रे पवित्रीकृते भिक्षासस्तुभिरेव
संप्रति वयं वृत्तिं समीहामहे ॥९२॥

नील छंद ।

मोतज मात रमा अब तू भज आन किसे ॥
जे तव भोगनहेत भजें तुम सेव तिसे ॥
मैं न चहों भवभोग कहा तुम मोहिं भजें ॥
लागत का निसप्रेहनकी चहिती न लजें ॥ १२ ॥
पत्र पवित्र पलाश के नौ वनते हरकै ॥
सुंदर ता पुटका कर मैं करमैं धरकै ॥
भीख पवित्र पवित्र घरे सतवादि गहों ॥
गंगकि पाथकि साथ भखों कुखिदाह दहों ॥१३॥

सोरठा ।

हम योगी निहकाम, प्राण धरें इमि हर भजें ।
तुमसों रह्यो न काम, रमो रमा भोगी जहाँ ॥ १४ ॥

श्लोकः ।

यूयं वयं वयं यूयमित्यासीन्मतिरावयोः ।
किं जातमधुना येन यूयं यूयं वयं वयम् ९३

पुनःकवित्त ।

पूरबले दिनोंविखे तेरी मेरी प्रीति सखे,
ऐसे होति भई तुम हम हम तुम हैं ।

एकठो विहार शैन वैसनो अहार हुतो,
अब कहा भयो तुम तुम हम हम हैं ॥
ताते तवे परे जललव जलजात सोऊ,
जलजात परे टरे तू मैं ताके सम है ।
आदि निरभेदवती माति निरवेद हती,
तोरा मोह तोरा मोहिं ताते उपरम है ॥ १५ ॥

श्लोकः ।

अशीमहि वयं भिक्षामाशावासो वशीमहि।
शयीमहि महीपृष्ठे कुर्वीमहि किमीश्वरैः ९४

पुनः तोटक छंद

हम भोजन भीखको अन्न करे। दिग चारके अंवर चार धरें ॥ कल भूतलपै सुख संग समे । कछुकाज न राजन साथ हमें ॥

श्लोकः ।

न नटा न विटा न गायका, न परद्रोह-
निबद्धबुद्धयः । नृपसद्मनि नाम के वयं,
स्तनभारानामिता न योषितः ॥९५॥

पुनः तोटक छंद ।

नट भाट विटा भट गीतक ना। परद्रोह विखे हम प्रीतिकना ॥ कुचभा गनिमी ललना न हमें । नृपधाम सखे कितकाम रमें ॥

श्लोकः ।

यदेतत्स्वाच्छन्द्यं विहरणमकार्पण्यमशनं, सहार्यैः संवासः श्रुतमुपशमैकव्रतफलम् । मनो मन्दस्पन्दं बहिरपि चिरस्यापि विमृशन्, न जाने कस्यैषा परिणतिरुदारस्य-तपसः ॥९६॥

कवित्त।

स्वच्छ व्यवहार विना दीनता अहार बनां,
सदाचारवारजनांबीच वास लयो है ।
वेदाध्यैन ब्रह्महक शांति फल लाभ इक,
मंद मंद मनको संपद दरसयो है॥
ऐसे गुणों सों सम्पन्न भयो अब मेरो मन,
को उदार पुराय जिन ऐसो फल दयो है॥

चिर रातों माहिं शोधा नाहिं हम ताहि बोधा,
तप तो न कोऊ कियो 'हर ग्याल' भयो है ॥ १८ ॥

दोहा ।

भरतशतक वैरागको, अलं नवम अध्याय ।
तामैं अनुभव भरतको, गायो कवि सतभाय ॥ ६ ॥

दोहा ।

करुणा कर दशम भनें, साधारण उपदेश ।
नवश्लोककर जनोंके, हने कलेश अशेष ॥ १ ॥

श्लोकः ।

न संसारोत्पन्नं चरितमनुपश्यामि कुशलं
विपाक पुण्यानां जनयति भयं मे विमृशतः।
महद्भिः पुण्यौघैश्चिरपरिगृहीताश्च विषया,
महान्तो जायन्ते व्यसनमिव दातुं विषयिणाम् ॥ ९७ ॥

नारदः छंद ।

विचित्र ए चरित्र जो भयोतपन्न लोकमैं ॥

मनाकमात्र क्षेमरूप तास ना त्रिलोक मैं ॥
विपाक पुण्यपुंजको विचार हौं ग्रहं जबै ॥
वही अनंत भीतिको जनंत है सही तबै ॥ २ ॥
महान पुण्यवृंदको कलेश धार जो करे ॥
महान भोग नारिलौं बसें तबै चिरं घरे ॥
वरिष्टमान भोगते सराग सो भुगंत है ॥
लखे न जंतु कालको जु कौन काल हंत है ॥ ३ ॥
विखे पुमान दो विखे अवश्य एक तो टरै ॥
चले प्रतंत्र भोग जे अनंत रोगको धरै ॥
जनाप जो तजे इने भजे निजापको तबै ॥
मतो समष्टको अमू न होत अन्यथा कबै ॥ ४ ॥
निकाम मोक्षको करें सकाम तेजमें मरें ॥
अहो सकामं काममों तथापि मूढ संचरे ॥
लखें सकामकामको सतज्ञ अग्निके समा ॥
हाहा कहा वृथा बितै सु अज्ञ ताहिमा समा ॥ ५ ॥

दोहा ।

मुक्तिहेतु निहकाम हैं, भुक्ति देत सहकाम ॥

केवल दुःखनिमित्त हैं, तजो जनो अपकाम ॥ ६ ॥

श्लोकः ।

आयुः कल्लोललोलं कतिपयदिवसस्थायिनी यौवनश्रीरर्थाः संकल्पकल्पाघ नसमयतडिद्विभ्रमा भोगपूगाः । कण्ठाश्लेषोपगूढं तदपि च न चिरं यत्प्रियाभिः प्रणीतं, ब्रह्मण्यासक्तचित्ता भवत भवभयाम्भोधिपारं तरीतुम ॥९८॥

पुनः कवित्त ।

सलिलकल्लोलतुल्य आयुषा चपल कुल,
यौवनकी द्युति पल कछु इसथित है ।
चलचित्त के समान भाव सब हानिवान;
घटाविखे छटावत भोगमल इति है ॥
कंठमों अलिंगना महान पीन अंगनाको,
तातें जो आनंद नाहिं चिर सो रहत है ।
नरकाय पाय नरो स्वस्वरूप चित्त करो,
भवे भय सिंधु तरा पुण्यसमो वित है ॥ ७ ॥

श्लोकः ।

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो, यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता याव-त्क्षयो नायुषः। आत्मश्रेयसि तावदेव वि-दुषा कार्याः प्रयत्नो महान्, संदीप्ते भवने प्रकूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥९६॥

पुनः सवैया ।

निज देह अरोग सभोग लखो नपिखो जब तीक समीप जरा। गुणमों शकती जबलौं न गती दरशो न हती जु सबी उमरा। निज श्रेयनिमित्तअमित्तकरो पुरुषारथ को सुनरोंउचरा। जरते गृहकारण कूपख नें बहु उद्यम तो अंधकूप परा॥ ८॥

श्लोकः ।

कृच्छ्रेणामेध्यमध्ये नियमिततनुभिः स्थी-यते गर्भमध्ये, कान्ताविश्लेषदुःखव्यति-करविषमे यौवने विप्रयोगः। नारीणाम-प्यवज्ञा विलासति नियतं वृद्धभावोऽप्य-

साधुः, संसारे रे मनुष्या वदत यदि सुखं स्वल्पमप्यस्ति किंचित् ॥ १०० ॥

पुनः अर्धनाराच छंद ।

अमेध्य कुक्षिमें महाँ । रुकंत काय सो तहां ॥
विराजमान होय है । महान कष्ट जोय है ॥ ९ ॥
जबै प्रसूतवायुते । सदुःख बाहिरावते ॥
क्रम्यादि गंदग्यादिते । सहे महा विषादते ॥ १० ॥
प्रहार मात तातकी । सहे सखादि भ्रातकी ॥
शिशादिमों अनंतही । सहे कलेश जंतुही ॥ ११ ॥
पुना युवाविषे जबै । त्रिया वियोग ह्वै कबै ॥
अनंत कष्ट जोय है । सहे न जात सोय है ॥ १२ ॥
पुना बालादिमैं दृशे । निरादरा हियों ग्रसे ॥
अवाच्य दुःखगाव हैं । असाधु वृद्धभाव है ॥ १३ ॥

चौपाई

तीन अवस्था तीनकालमैं । नहिं अवलोकत सुख कतहूँ मैं ॥ अजचींटीते ले भवजेतो । सर्व दुःखकर संयुत तेतो ॥ १४ ॥ सुखस्वरूप है एक निजातम ।

इतर दुःखमय सर्वअनातम । तासुख अतेकितेसुख
जोलव । तौतुम भनों जनों निजअनुभव जोतुमसुख
के प्रापतिकारण । सहो दुःखते दुखतर दारुण मरण
प्रयंत कष्ट अतिपावो । सुखी स्वमुखते कवीनगावो

दोहा ।

जेते सुख सतलोकलौं, ते ते देते कलेश ॥
अतिमसुखते अते सुख, किते नहीं लवलेश ॥१७॥

श्लोकः ।

भोगा मेघवितानमध्यविलसत्सौदामिनीचञ्चला, आयुर्वायुविघट्टिताभ्रपटलीलीनाम्बुवद्भङ्गुरम् । लोला यौवनलालना तनुभृतामित्याकलय्य द्रुतं योगे धैर्यसमाधिसिद्धिसुलभे बुद्धिं विदध्वं बुधाः१०१

पुनः नील छंद ।

मेघवितानसमान विषे चपला चल ज्यों ॥
हैं शबदादिक भोग सबै अतिचंचल त्यों ॥
संघट वारिदवृंदबिखे जल वायु हरे ॥

काल तथा सब जीवनकी हत आयु करे ॥ १८॥
भोगनकाज लडावत यो जन यौवनको ॥
लोल कलोलसमान स्वभाव लखो तिनको ॥
विश्व समस्त विनश्वर शोध तुरंत नरो ॥
योगविखे निजचित्त अरोपण नित्य करो ॥१९॥

दोहा ।

धीरज करके सिद्ध जो सुभग समाधि तुरंत ।
तामहिं अरपो मन जनो, पुनर्जन्म है्व अंत ॥२०॥

श्लोकः ।

भोगा भङ्गुरवृत्तयो बहुविधास्तैरेव चायं भवस्तत्कस्यैव कृते परिभ्रमत रे लोकाः कृतं चेष्टितैः । आशापाशशतोपशान्ति-विशदं चेतः समाधीयतां, कामोच्छित्ति-वशे स्वधामनि यदि श्रद्धेयमस्मद्वचः १०२

पुनः चौपाइ ।

विषयभोग जे अनिकप्रकारे । दुखद सरोग विनश्वर सारे ॥ ए ततही भवरूप निहारो । विना भोग संसार

असारो ॥ तउकतहेत जगत कृतअंतर । कीटकपिन
वतभ्रमतानिरंतर । रे लोको अविलोको नाहीं । शिर
पर काल बाण करमाहीं ॥ क्षणमहिं प्राणहीन कर
डारे । बली अक्षम दया न धारे ॥ तुमनिशिदिनअघ
ओघ कमाते । बल अबलादि स्वादु मदमाते ॥
जानों मनमा मरणो साँचो । तब कतहेत वृथाभव
राचो ॥ भांति भांति भवचेष्टाकरके । लहो कदा
चितशांति न मरके ॥ ममवचननमहिं तव श्रद्धाजब
दुस्संकल्पविकल्प तजो तब ॥ आशापाश बहुत
विधिकीजे । तासु निवासनउरमहिंदीजे ॥ रजोत
मोमय धीवृत्ती लख । करोतासुको नाश पाशलख
निर्मल सतोवृत्ति सोंमिलकर । नरोकरोतुममननिर्म
लतर ॥ ऐसे विशद चित्तकोलोका । सम्यक निजस्व
रूपमाहिं रोको । चितचेतनाबिबनिर्मलताते । होहिं
अभेद सजातीजाते २७ भेदसजातीपुनः विजाती ।
स्वगत त्रिभेद अतीत अती ॥ ताते तामों वृत्ति
सजाती । अरपो जनों तुमूं दिनराती २८ जीवईश

को भेदन भोरा। जाहिंमिले पुननाहिं बिछोरा॥ सकल कामनात्याग अधीनो। सर्वेच्छा तज ताको चीनों॥ यातन माहिं निजातमसुखको। अनुभव करो हरो भवदुख को॥ मोर गिरामेंतोरसनेहा धरो तबै तुम मम मति एहा ३०

दोहा।

विषम दुखद क्षणभंगमय, भोगरूप संसार॥
ताको विद संसारसम, कोविद देत निवार॥ ३१॥

श्लोकः।

तस्मादनन्तमजरं परमं विकाशि, तद्-
ब्रह्म वाञ्छत जना यदि चेतनस्थाः।
यस्यानुषाङ्गिण इमेभुवनाधिपत्यभोगादयः
कृपणलोकमता भवन्ति॥ १०३॥

पुनः सवैया।

जवहो बुधिमान पुमान भवान तबौततब्रह्मको ध्यान धरो। जु अनंतविकाश परंअजरंततला भतिआनन लाभ परो॥ रुचिहेतु विपाश्चित केचितकोभवभोग

कदाचित है सगरो ॥ जननीच करे रति बीच इने अज्ञ तज्ञ विखे इतनो अंतरो ॥ ३२ ॥

पुनः तोटक छंद ।

जडरूपसबी तनआनजिते । जिनमें नशुभाशुभज्ञान किते ॥ चिदएकलखोनरकेतनको । जिममाहिंलखे सतचेतनको ॥ सुखरूप अनंतपरंअजरं । अजरूप विकाश अनूप ररं ॥ सम ए दशलक्षण आतम के अधुनारथ भाषत हैं तिनके ॥ वहि सत्य त्रिकाल अबाधजु है । इनमें श्रुतिलौकिकमानदुहै ॥ श्रुति वाक्य सदैव इतादिररे । जनजे जनमांतरकामकरे फलताकृतको इतलोकामिले । इतकीकरणीपरलोक फले ॥ इमिजीवमरे नाहिंलोकमते । सब जीव कुजीव अहेजिहँते ॥ मनधीतनलौंजडरूपसबी । नस्वते जिनमों कछु ज्ञान कबी ॥ इक चेतन ते सब चेतन हैं । इति हेतु चिदातम धीर लहैं ३७॥ सुखसागर ब्रह्म कि अंशाकिनी । अनुस्यूत त्रिलोक विषेसघनी स्थित कंचन कंदल माहिंयथा । सब भोगनमों सुख

ताहिंतथा ।। तिहितेन अतेसुखनैकाकिते । सुखमूर
तिस्वातमहेतु इते ।। न प्रमाण विषै नहिं नाश जिसे
परिपूरण औनहिंजन्यकिसे ।। इतिहेतु अनंत नि-
जातम है । परते पर जो परमातम है ।। तनवाम
तनै धनधाग्यपरै । जिहंवेद मनादि नवेद ररे४०
इतिरिति परातमवेदभना । अजरातम मायककाय
विना अथवा असि अग्निकटेनदहे । सबकातमते
अजरासुकहे ।। इतिपारथ को भगवान रटो । नहिं
जन्य अनादि स्वते प्रगटो ।। भवहेतु विशेषण चार
गहे । तसमात अजातमवेद कहे ।।४२।। नाहिंजाग्र
तस्वप्ननींदविखे । सकुचात विकाश स्वरूप विखे
थक वेद हेट उपमा भनके । त्रिपुटीविन एक बिषै
किनके इतिहेतुअनूप पुनःसमहीं । दुगधादिसमं परि
णाम जित एकरसातम वेद कथा । अथवा सबमों सम
रूप तथा तुम चेतन कायकोपायनरो । इस चेतनमों
अति प्रीति करो । भुवनाधिपतादिक भोगजिते ।
ततब्रह्मअवांतर एभिातिते द्युति दीप यथा रविमैं
बरते । न रते इनमैं नर जे बरते ।। इनमैं जन मूढ

सनेह करें । तस्मात पुनापुन देह धरें ४६ तनचेतन चेतन हेतु भयो। भवभोगन हेतु न देव दयो ॥इति हेतु जनो तुम भोगत जो । तन मानस मो निज ब्रह्म भजो॥

श्लोकः ।

त्रैलोक्याधिपतित्वमेव विरसं यस्मिन्महाशासने, लब्ध्वासनवस्त्रमानघटने भागे रतिं माकृथाः ।भोगःकोऽपि स एक एव परमो नित्यादितो जृम्भते,यत्स्वादाद्विरसा भवन्ति विषयास्त्रैलोक्यराज्यादयः॥१०४॥

पुनः कवित्त ।

परम उदित नित्य स्वप्रकाश सत चित,
ऐसे एक ब्रह्ममैं को एक जन वसे हैं ।

कंजपूत पुरुहूतकी विभूति भूत शिखी,
घासराश के समान मानके न फँसे हैं ॥

तीनलोकराज्यआदि संपदा अस्वाद भासे,
जाकी छायामात्रकर मायामात्र लसे हैं ।

ताते भिन्न भोग क्षणभंगुर को राग तजो,
राग द्वेष नाग रिदेबिलमों न धसे हैं ॥ ४८ ॥

दोहा ।

भोग राग जबहीं गयो, गयो द्वेष तिहँसंग ।
जबै विलय यहि द्वैत भ्रम, तबै तबै चिद अंग ४९

श्लोकः ।

भोगास्तुंगतरंगभंगचपलाः प्राणाः क्षण-
ध्वंसिनः, स्तोकान्येव दिनानि यौवनसु-
खं प्रीतिः प्रियेष्वस्थिरा । तत्संसारमसार-
मेव निखिलं बुद्धा बुधा बोधने लोकानु-
ग्रहपेशलेनमनसायत्नःसमाधीयताम् १०५

पुनःकवित्त ।

तुंग भोग इंद्रलोक मर्त्यलोकलग जे जे,
ते तेही तरंगसम भंग पहिचानो रे ।
जीवन के जीवने की राम एक स्वास सोऊ,
दामिनीसमान क्षणमाहिं हान जानो रे ॥
यौवन को सुख थोरे दिनोंमें विमुख होरे,
मीतन की प्रीति पुनि नीत न पछानो रे ।
सकल संसारको विचारके असार तजो,
बोधहेतु बुद्धिमानो मेरी बुद्धि मानो रे ॥ ५० ॥

दोहा ।

मुखआत्मा के दर्शहित, चिता दर्शको शोध ॥
सभपर करुणारेणु कर, विनशे द्वैत विरोध ॥ ५१ ॥
दशमो सर्व सुहृद अती, भयो सुअंतर्धान ।
हरे सकलके दुःख को, करे वेग कल्यान ॥ १० ॥

सोरठा ।

रुद्राध्यायमंझार, अधुना निंदहिं नारिको ।
चार श्लोक उचार, जाते तजे उदार त्रिय ॥१॥

श्लोकः ।

स्तनौ मांसग्रन्थी कनककलशावित्युप-
मितौ, मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशाङ्केन
तुलितम् । स्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरकर-
स्पर्धि जघनं,मुहुर्निन्द्यं रूपं कविजनविशे-
षैर्गुरु कृतम् ॥ १०६ ॥

कवित ।

मांसग्रंथि कुचनको कंचनके कुंभ कहैं,
सोमसम मुख कफधामको उचारे हैं ।

चंपाकलीके समान दाडिम के दाने भाने,
हाड़नकी दाँतपाँतिको दिवाने मारें हैं ॥
मूत्रभिगी जंघनकी संघनी बड़ाई भने,
निंदत गजिदकर केलाको निवारें हैं ।
अहो निंदायोग्य रूप अंगनाको ताकी ऊप,
ध्वने मतवारे शीश धुने मतिवारे हैं ॥ २ ॥

श्लोकः ।

दीना दीनमुखैः सदैव शिशुकैराकृष्टजी-
र्णाम्बरा क्रोशद्भिः क्षुधितैर्निरन्नविधुरा
दृश्येन्न चेद्गेहिनी। याच्ञाभङ्गभयेन गद्ग-
दगलत्त्रुट्यद्विलीनाक्षरं को देहीति वेद-
त्स्वदग्धजठरस्यार्थे मनस्वी पुमान् १०७॥

पुनः कवित्त

जठराग जारे पेट निज ताँके शांतहेतु,
कौन मानी प्राणी देहि वाणी जो उचर है ।
गदगद गलत तुटत लीन अंक जामें,
यांचाभंगभैसों ऐसी गिरा भी न रर है ॥

मुखे बार रोके गार देके टूको मागे मांते,
दीनादीनमुख जाके चीणा पट हर हैं ॥
जौलौं ऐसी निजनारी व्याकुली निहारी नाहिं,
पेखनेते पेखने ज्यों नाचे घरघर हैं ॥ ३ ॥

श्लोकः ।

सत्यामेव त्रिलोकीसरिति हरशिरश्चुम्बि-
नीविच्छटायां सद्वृत्तिं कल्पयन्त्या वट-
विटपभवैर्वल्कलैः सत्फलैश्च । कोऽयं वि-
द्वान् विपत्तिज्वरजनितरुजातीव दुःखासि-
कानां वक्त्रं वीक्ष्येत दुःस्थे यदि हि न वि-
भृयात् स्वे कुटुम्बेऽनुकम्पाम् ॥१०८॥

पुनः दोहा ।

दुरित हरत त्रैलोकके, तुरत त्रिलोकीसरित ।
ईशशीशकी जटाको, छहाति छटा जिहँ सरत॥४॥
ता तटपर सघट विटप, वल्कल फुलफलदाय ।
सुखद सर्वदा रुचिर शुचि, शुभवटादिकी छाय॥५॥

सोरठा ।

असं सुरसारिके होत, कृपण नृपन दुर्मुखनको ।
निरखत निपुन न कोय, निजकुखपोखनकारणे॥६॥

दोहा ।

उत्पतविपतातापते, दुसह दुःख जु क्षुधादि ।
निजकुटुंब अस विकल लख, करे सुजन जु प्रमादि ७॥
वही पुरुष परिवारकी, विपताहरणनिमित्त ।
वायकसायक खलोंके. सहे सही हित वित्त ॥८॥
दुखी देख परिवार निज, दुखी होत मतिहीन ।
भ्रष्ट आतमानंदते, भयो दीनते दीन ॥ ९ ॥
करुणा करे कुटुंबपर, दुखी देख तिहँ अंध ।
नरते दुख टरते न तिहँ, जो अदृष्ट प्रतिबंध ॥१०॥
जासकृपाकी कृपा कर, नाश उभय आनंद ।
ता करुणाते नरनको, मरणाशुभविन मंद ॥११॥

सोरठा ।

तत तत करते काम, भवत दुःख परिणामजित ।
त्रियानुकंपादाम, गरे परी पशुवत चरे ॥१२॥

दोहा ।

दुःखविसरजन कृपण घी, सहत कष्टते कष्ट ।
निशिवारस आसुरमती, करत स्वापको नष्ट ॥१३॥
वह्यो जात भवसिंधुमहिं, पायो कष्ट अवाच ।
दया न शठ निजपर करे, जाते दुखते बाच ॥१४॥
सुजन मया निजपर करे, अपनो करे उधार ।
भजे हरि हरिद्वारको, तजे कुटिल परिवार ॥१५॥

सोरठा ।

मात तात गुरु नारि, जो विघनी हरिभजनमहिं ।
ताको डार उदार, हरिभज जन्म सफल करे ॥१६॥

श्लोकः ।

विरमत बुधा योषित्संगात्सुखात्क्षणभङ्गु-
राद्भजत करुणमैत्रीप्रज्ञावधूजनसंगमम् ।
न खलु नरके हाराक्रान्तं घनस्तनम-
ण्डलं,शरणमथवा श्रोणीबिम्बं रणन्मणि-
मेखलम् ॥ १०९ ॥

पुनः चौपाई ।

योषितयुतसंभव सुख जोऊ। हरो नरो क्षणभंगुरसोऊ॥
आयु स्पर्शमात्र है ताकी।भोगत परमदुःखातिहँबाकी॥
भोगानंद न धन विनपावत । विना अनर्थ द्रव्य नहिं
आवत। विषय भोग सुख लाभ निमित्ता। कर अनर्थ
कछु संचित वित्ता। ताकर दुखमिश्रित सुख भोगत ।
ता फल मरकर लहत अधोगत ॥ ताते नखशिखा-
ग्रलौं नारी । मोक्ष विषेप्रतिबंधक भारी ॥ १६ ॥
निकर दुखां कुरत्रियके गाता। तजे त्रिधा विधिताहिं
प्रमाता॥ घन कुच मडंल मृदु रमणी को। संयुत मुक्ता
हार मणिको॥ सर्व ओर अति सुंदर लागे । हेरत
जास मनोभव जागे। हेम मणीमय बणी तडागी।
श्रोणी बिंबोंपर वर लागी ॥ २१ ॥ अति शब्दाय
मान अभिरामी। जिहँ ध्वनि सुन जनमुह्यतकामी॥
अंग अंगना के हैं जेते।हेतु अनंगागानिके तेते ॥२२॥
तामैं जंतु निरंतर जरते । उर विचारमय वारि न

धरते ॥ क्रोध लोभ मोहादि वक्र छल। सखा मैन के मैन तुल्य बल ॥ एक पंचशर को जहँ वासा। तहाँ क्रोधलौं करहिं निवासा ॥ जहां एकको गणती आवे। तहाँ अनेक अवश्य रहावें ॥ नरतनमों जन्मैं अरु मर हैं। जब कुसंग सतसंगति करि हैं ॥ सर्व अनर्थ हेतु सुखहंता। गजरत सब अपवरग प्रयंता ॥ सब संबरसम उरको जारत। शमदमादि संतोषहिं टारत ॥ त्रियके गात सु अंबर भूषण। दर्शे कबी विलोके दूषण ॥ जाकर मन मथ मथन मन को। नातर मन व पुहै त्रियतन को। लगो बाममों काम उपावे। प्रथम विवेक समादि नशावे ॥ २७ ॥ छलामर्ष मद मोह सनेहा। इनहिं अवय वहिं सहित अदेहा भयो पुष्ट प्रतिजन्म मँझारी। बृहद्भानु इव जारत भारी ॥ २८ ॥ या विधिनिकर अवधहत करके। परत नरक महिं जवनर मरके ॥ तहां ताहिं नरकागनि जारे। दुःख

अवाच्य अनुभवहिं सारे ॥ तेकत नरक दुःख ते राखहिं। नहिंराखहिं प्रति तामहिं राखहिं ॥ इत्त उत माहिं तपा वन वारे । नारि अवयव हृदय जब धारे ॥ ताते संग वाम को तजिये । नातर अवर वधूजन भजिये ॥ करुणा मैत्री प्रज्ञा भारी। सेवहु सुखद अयंत्रय नारी ॥ ३१ ॥

सोरठा ।

मत दर्शो त्रियअंग, जो कदापि चूके पिखो ।
निश्चय लगे कलंक, भाद्रचौथके चंद्रवत ॥ ३२ ॥

दोहा ।

त्रियानिंद एकादशो, अलं भयो अध्याय ।
बल गुण गण नरके हरे, मरके नरके पाय ॥११॥

दोहा ।

वृद्धावस्था द्वादशे, पांच छंद कर निंद ।
दुःख निरादर चिंत निधि, विन पौरुष मातिमद॥१॥

श्लोकः ।

वर्णं सितं समधिवीक्ष्य शिरोरुहाणां, स्थानं जरापरिभवस्य तदेव पुंसाम् । आरोपि-

तास्थिशकलं परिहृत्य यान्तिचाण्डाल-
कूपमिव दूरतरं तरुण्यः ॥ १११ ॥

कवित्त ।

जराकर सेत बार नरों के निहार नारि,
करें तांहि त्रिसकार भागे फेर नारिको ।
हाड़घटी रज्जु नारि मंदरस हेर डार,
विप्रनारि वृद्धरूप कूप चमिआर को ॥
दाहें तीन ताप भानु नैन बैन ज्ञान कान,
तजें ताहिं मात आदि ज्यों उदार दारका ।
अहो कष्ट जीव दुष्ट तजे न अनिष्ट अजे,
नारी तजे तन भजे मन अजे नारिको ॥ २॥

श्लोकः ।

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती; रो-
गाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम् । आयुः
परिस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो, लोकस्त-
थाप्यहितमाचरतीति चित्रम् ॥ ११२ ॥

दुवैया छंद।

व्याघ्रीके सम स्थित ह्वैकर जरा अवस्था करति प्रहार॥ तीक्ष्ण क्रूर नखाग्ररोगकर परिताडत तन को बल धार॥ उचित अवधि परिस्रवत सतत इव फूटे घरते छूटे वारि॥ लोक सुअहित तदपि आचर है अहो करे हित नांगीकार॥ ३॥

श्लोकः।

गात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलिर्दृष्टिर्नश्यति वर्धते बधिरता वक्रं च ललायते। वाक्यं नाद्रियते च बान्धवजनैर्भार्या न शुश्रूषते हा कष्टं पुरुषस्य जीर्णवयसः पुत्रोऽप्यमित्रायते ११३॥

मनोज छंद।

सकुचे सब अंग विभंग सुचाल।
पुन भ्रष्ट सभ्रष्ट भई रदमाल॥
द्युति लोचनकी सब मोचन अस्त।

नहिं कान सुने कलहान समस्त ॥ ४ ॥
मुखमध्य भई कफवृद्धि महान ।
इतिहेतु सदुःख गतागत प्राण ॥
कछु याचन हेतु मुखों जब वाच ।
जन बंधु बकें तव वाक्य अवाच ॥ ५ ॥
ललना पलना मिलना जु तजाति ।
वहिनाहाकिसेवकु नाहिं करंति ॥
पुन जीरण आयुष मानुष जोय ।
निज पुत्र अपी सम शत्रु विलोय ॥ ६ ॥
तिनके दुर्वायक सायकसंग ।
उर वेधत भी न तजे तिन संग ॥
इतिरिति बितीत भई सब आउ ।
न अजेपि तजे निज मंदसुभाउ ॥ ७ ॥

दोहा ।

जरा उपाय न हैसके, जरा आयुके माहिं ।
भवसागरके तरणको, तरुण अवस्था आहि ॥ ८ ॥

श्लोकः ।

वलिभिर्मुखमाक्रान्तं, पलितैरङ्कितं शिरः।
गात्राणि शिथिलायन्ते, तृष्णै का तरुणा-
यते ॥ ११४ ॥

कवित्त।

आननकी छबि वली गणोंकर टली गली,
काननकी गली बल अंकोंमें न भास है ।
लोयनके माहिं कछु लोय नाहिं परे स्वच्छ,
रसनामों रस नाशो नासकला नाश है ॥
केश भए उजर न रह्यो कछु उजर,
जवानी गई उजर न स्वासको विश्वास है ।
तृष्णा तो अनंत अंत भयो है सघांतसब,
शांति भई सांत नाहिं शांत भोगआश है ॥ ६ ॥

श्लोकः ।

निवृत्ता भोगेच्छा पुरुषबहुमानो विगलितः,
समानाः स्वर्याताः सपदि सुहृदो जी-

वितसमाः । शनैर्यष्ट्युत्थानं घनतिमिररु-
द्धे च नयने, अहो धृष्टः कायस्तदपिमर-
णापायचकितः ॥ ११५ ॥

कवित्त ।

तन वृद्ध भएते न वृद्ध भई भोग इच्छा,
मनमैं तो भोगनकी कोटिमन रति है।
सेनेसेने उतथान लोचनकी द्युति हान,
मानवको बहुमान हान भयो अति है॥
सखे समबैसवारै प्राणोंवत जेई प्यारे,
कबके पधारे नाक देखो ऐसी गति है।
अहो अजे नीच निज मीच बीच हासी भजे,
जीव चहत मृत्यु जीव न चहत है॥१०॥

सोरठा ।

दुख अनेकको गेह, विना विवेक विवेककर ॥
निंद जरजरो देह, भयो इतिश्री द्वादशो ॥ ११ ॥

दोहा ।

कहें त्र्योदशे कृपा करे, संकीरण उपदेश ॥

शंकर वीश श्लोककर, जनमननलिन दिनेश॥१॥

श्लोकः ।

जातः कूर्मः स एकः पृथुभुवनभरायार्पितं येन पृष्ठं, श्लाघ्यं जन्म ध्रुवस्य भ्रमति नियमितं यत्र तेजस्विचक्रम् । संजातव्यर्थपक्षाःपरहित करणे नोपरिष्टान्न चाधो, ब्रह्माण्डोदुम्बरान्तर्मशकवदपरेजन्तवोजातनष्टाः ॥ ११६ ॥

गीया मालती छंद ।

हे धन्य कूरम एक सो पर अर्थ जिहँ भवलीन है ।
पृथु भुवनभार तरे जिन निजपृष्ठ अर्पण कीन है ॥
अतिजन्मध्रुवकोयोग्यकीरति जासकी रतिहरिविखे
चौफेर जाके तेज चक्र भ्रमंत रोक्यो सब पिखे॥२॥
ज्यों मशाक गूलरफलविषे संघट महासंकट सहैं॥
पख वृथा संभव ताहिंके नाहिं अर्ध ऊरधबिच रहैं॥

संजात जहँ मरजात तहँ ब्रह्माण्डमें त्यों जंतु हैं ॥
नाहिं ज्ञात धर्माधर्मकी संभोग में रतिवंत हैं ॥३॥
परमार्थ अरु परस्वार्थ द्वैवृत्ति पंखसंयुत जन सवे।
प्रारब्धके वशि स्वार्थके पुरुषार्थ करते संदवे ॥
जन जहां लागे प्राण त्यागे विन तिसे नाहिंतजत हैं।
संवेदयुक्ति न बंध निज अश्रेयको जड भजत हैं॥४॥

दोहा।

गूलरफल ब्रह्मांडमों; मच्छरमानव आन।
गहैं मुक्तिविन जन्मगण, स्वपर अकिंचित ज्ञान॥५॥

श्लोकः।

स जातः कोऽप्यासीन्मदनरिपुणा मूर्ध्नि धवलं कपालं यस्योच्चैर्विनिहितमलंकार-विधये। नृभिःप्राणत्राणप्रवणमतिभिः कैश्चिदधुना नमद्भिः कः पुंसामयमतुलदर्प-ज्वरभरः॥ ११७॥

कवित्त ।

वही जन जनमे कपाल जाके उज्वलको,
धार्‍यो समरारि शिर ऊँचो अलंकार मान ।
मानद अमान मान जाको तन धन हान,
परकामहेत होत वही जन धन्य जान ॥
केचित इदानी प्राणा वृथा महामानी भए,
अबलादि याचकान कीनो मान जो मदान ।
तासमान तापते पुमान कैसे तपे आप,
मानके समान साप मानको न करे मान ॥ ६ ॥

दोहा ।

अहंकारते होत सब, कतुव्रतादि फलहान ।
अरु विन गुण जो दर्प है, सो अरि सर्पसमान ॥७॥

सोरठा ।

ताते मत मतिमान, मान कर अभिमानको ।
गर्व सर्व दुखखान, सुख अवास मदनाश है ॥८॥

श्लोकः ।

पातालान्न समुद्धृतो बत बलिर्मृत्युर्न नीतः

क्षयं, नोन्मृष्टं शशिलाञ्छनस्य मलिनं नोन्मूलिता व्याधयः । शेषस्यापि धरां विधृत्य न कृतो भारावतारः क्षणं, पौरुष्यं त्वकृतं रुषाभिगणनां मिथ्या वहन् खिद्यते ॥ ११८ ॥

कवित्त

बालिको पातालते निकालके न नाक पठ्यो,
कालको न नाश कीनो भवरिपु पीनो है।
विधुकी न मैल धोई व्याधिकी न जड़ खोई,
शेषशीश भार सो न काहूँ क्षण लीनो है॥
पौरुष न कुछ कीनो क्रोध अभिमान पीनो,
वृथा मान लीनो नर नागसिंह चीनों है।
कीकरको तरु लाये कीकर सुफल पाय,
साधुनको पद चाहे साधन ते हीनो है॥ ९॥

श्लोकः।

रम्याश्चन्द्रमरीचयस्तृणवती रम्या वनान्तःस्थली, रम्यः साधुसमागमः शमसुखं

काव्येषु रम्या कथा। कोपोपाहितबाष्पबि-
न्दुतरलं रम्यं प्रियाया मुखं,सर्वं रम्यमनि-
त्यतामुपगते चित्ते न किंचित्पुनः॥११९॥

सवैया।

रमणीक मयंककिया किरणा कलभूमिवनांतहरेतृण
वारी॥ सतसंगति सुंदरचारु सतांसुखमंजुनिबंध
कथामृतभारी॥ रुठसोंउठकंलवलोचनते सुठतांमिल
नारि मुखांबुजकारी। कमनीय सवीचितशांत जवी
रमणीय तवीनकछूनिरधारी॥

दोहा।

दुखानंद अरु मित्र अरि, पुना सुरूप कुरूप।
द्वंद्व वादपरमादमों, अप्रमाद शिवरूप॥११॥

सोरठा।

निजकुखपोषनकाम, तुल कुलदीन कवी न है।
याचेवन वा ग्राम, मानी प्राणी धन्य बहु॥१२॥

श्लोकः।

पुण्ये ग्रामे वने वा महति सितपटच्छन्न-
पालीं कपालीमादाय न्यायगर्भद्विजहुत-

हुतभुग्धूम्रधूम्रोपकण्ठम् । द्वारंद्वारं प्रवृ-
त्तो वरमुदरदरीपूरणाय क्षुधार्तो, मानी
प्राणी सुधन्यो न पुनरनुदिनं तुल्यकुल्येषु
दीनः ॥ १२० ॥

सवैया ।

वनग्रामनमोंढकपालिकपालिसितांबरसोंगहिभ खी-
स्वततंरे ॥ जिहँधामनमों वरबामनहोमतआज्य
तिलाहिप्रजार बसंतर ॥ तिहँहोमके धूमसोंमंदिर
को लखधूसर अंतर भाग निरंतर ॥ विचरेसुप्रसाद
प्रसादविखे भख आदि प्रसाद भखे परतंतर ॥१३॥

सोरठा ।

जो जन मानी आहि, भोजनभिक्षाको करे ।
वायकसायक नाहिं, सहे सजाती जनोंके ॥ १४ ॥

श्लोकः ।

येनैवाम्बरखण्डेन, संवीतो निशि चन्द्र-
माः । तेनैव च दिवाभानुरहो दौर्गत्यमे-
तयोः ॥ १२१ ॥

दोहा ।

जिस अंबरके खंडकर, निशिमांहिं सोम वितीति ।
तिसे खंडकर पुन दिने, मारतंड संवीत ॥ १५ ॥
अद्भुत दुर्गति दुहुनकी, भ्रमत सर्वदा जोय ।
चतुर्हेतु यामों कहे, लहे चतुर नर कोय ॥१६॥
कैधों कर्मविपाकको, विधु दिनमणि भोगंत ।
विन भोगे भागे नहीं, कर्मगती बलवंत ॥१७॥
कै हरिमय लखि जगतको, सेव करत द्वै देव ।
किधों हरी आज्ञा करी, भवमर्यादाहितेव ॥१८॥
अथवा संतजनानके, लक्षणको दर्शन्त ।
हेर शुभाशुभ लोकगति, है असंग विचरन्त॥१९॥
तजहिं आपदामाहिं भी, नहिं निजापदज्ञान ।
सूचत गुण मुक्तानके, चंद्रभानुगति मान ॥२०॥
ताहिं गतागतको कहत, दुर्गति दुर्मतिवंत ।
पूर्वउक्त चहुँ हेतुको, जे न जानते जंत ॥२१॥

श्लोकः ।

विवेकव्याकोशे विदधति शमे शाम्यति

तृषापरिष्वङ्गे तुङ्गे प्रसरतितरां सा परिणतिः । जराजीर्णैश्वर्यग्रसनगहनाक्षेपकृपणः कृपापात्रं यस्यां भवति मरुतामप्यधिपतिः ॥ १२२ ॥

दोहा ।

हरे तृषा वैराग सब, धरे विवेक विकाश ।
तुंगभोगसंयोगकर, होत न तृष्णानाश ॥२२॥
प्रतिप्रवृद्ध तृष्णा भवत, जिमि कृशानु घृतसंग ।
यथा विवेकीके उरे, विद्या बृद्ध अभंग ॥२३॥
जरासहित जीरण लखी, अपनी शक्र विभूति ।
दुखी भयो मनमाहिं तब, ताहिं विना पुरुहूत॥२४॥
नष्टविभव भव दुसह दुख, तज नहिं सके सुरेश ।
विष्णुआदिकी कृपाको, पात्र भयो अमरेश॥२५॥
जरा जातुधानादिकर, भवत विभव मम हान ।
करुणाकर करुणा करो, तासु त्राण भगवान॥२६॥
तुंगभोगसंयोगकर, नाश जु होती प्यास ।
मघवा होतो दीन कत, हरिअजादिके पास ॥२७॥

विविध विषयके भोगकर; नहिं विबुधेश अघात।
स्वलप अवधि लव भोगकर, नरनशांतिकत जात २८
ताते इच्छानाशकी, जाको इच्छा आहिं।
उपशम धरे विचारयुत, टरे एकते नाहिं ॥२९॥

श्लोकः।

शिरः शार्वं स्वर्गात्पशुपतिशिरस्तः क्षिति-
धरं, गिरीन्द्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि ज-
लधिम्। अधोधो गङ्गेयं पदमुपगता स्तो
कमथवा विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः
शतमुखः ॥ १२३ ॥

चंचला छंद।

गंगनीर ए कछू अधे अधे गती करंत।
नाकते हरेशिरे पुना गिरिंदपै गिरंत॥
गिरिंदते धरापरे धराति सिंधुमैं परंत।
शून्य जे विवेकते अनेक योनि ते धरंत॥ ३० ॥

श्लोकः।

तृषा शुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं स्वादु

सुरभि, क्षुधार्तः सन् शालीन् कवलयति शाकादिवलितान्। प्रदीप्ते कामाग्नौ सुदृढतरमाश्लिष्यति वधूं, प्रतीकारो व्याधेः सुखमिव विपर्यस्यति जनः ॥१२४॥

कवित्त ।

जब मुख तृषाकर सूखे तब पीवे नर,
मीठे ठंढे हरके सुगंधिवारे वारिको ।
क्षुधाकर भयो दीन शालीन महीन खात,
मेलके वरीन शाक रागसों अचारको ॥
जागे मदनागे जब सानुरागे दौर तब,
नार में लगावे नर दृढकर नारिको ।
व्याधिके प्रहारप्रति करे प्रतिकार प्रति,
कैसे दुख भागे त्यागे संयमोपचारको ॥ ३१ ॥

सोरठा ।

तृष्णावृद्धि अभंग, अतिभोगोंके भोगकर ।
यथा अग्नि घृतसंग, संयमजलकर शांत निव॥३२॥

श्लोकः ।

किं वेदैः स्मृतिभिः पुराणपठनैः शास्त्रैर्म-
हाविस्तरैः. स्वर्गग्रामकुटीनिवासफलदैः
कर्मक्रियाविभ्रमैः । मुक्त्वैकं भवभारदुः-
खरचनाविध्वंसकालानलं स्वात्मानंदपद-
प्रवेशकलनं शेषा वणिग्वृत्तयः ॥१२४॥

कवित्त ।

चारों वेद तंत्र छटे, सिमृति सताई पठे,
आगम जो दशआठ महाविसतरे हैं ।
मतोंसों विभ्रम महाकर्मक्रिया कर कहा,
देवग्रामकुटीमों विश्राम फल करे हैं ॥
प्रलैकाल आगवत आतमविषैणी मति,
भवदुःख करे हत सो कुमति हरे हैं ।
शेष काम सारे वणजारे वृत्तियों निहारे,
के दुकानके पुरान कर प्राण धरे हैं ॥३३॥

दोहा ।

कहा ग्रथंगण के पढ़े. किं करमों के कीन ।
चिज्जडग्रंथि प्रभेदिनी, धी उर जब प्रगटीन ॥३४॥

श्लोकः ।

रात्रिः सैव पुनः स एव दिवसो मत्वा बुधा जन्तवो, धावन्त्युद्यमिनस्तथैव निभृताः प्रारब्धतत्तत्क्रियाः । व्यापारैः पुनरुक्तभुक्तविषयैरित्थंविधेनामुना, संसारेण कदर्थिता वयमहो मोहान्न लज्जामहे ॥ १२६ ॥

छप्पय छंद ।

वही यामिनी जान पुना दिन तथा मानकर ॥
मंद जंतु धावंति उद्यमात्यंत चित्त धर ॥
प्रारंभी प्रारब्ध क्रिया तहँ तहँ त्यों राते ॥
वही उक्त पुन वही भोग भुक्ते दिनराते ॥
इमि विषयरूप या जगतके, व्यापारोंकर श्रम सहें ॥
परिभ्रमत विरमतनमोहकर, अहो किंन लज्जागहें ३५

दोहा ।

अहो शब्दपुनरुक्तिते, अति डरपहिं बुधिमान ॥
पुनाउक्त पुनभुक्त यहि, कत पुनरुक्ति प्रमाण ॥३६॥

श्लोकः ।

क्षणं बालो भूत्वा क्षणमपि युवा कामर-
सिकः, क्षणं वित्तैर्हीनः क्षणमपि च संपूर्ण-
विभवः ॥ जराजीर्णैरङ्गैर्नट इव वलीमण्डि-
ततनुर्नरः संसारान्ते विशति यमधानीज-
वनिकाम् ॥ १२७ ॥

गीयामालती छंद ।

नट वांगु नरबहु स्वांग धरवपु बालपलमहिं लसकहै ।
पुन क्षणविखे तनुतरुण है तरुणीन भोगहिं रसकहै ।
हत सर्व द्रव्य निमेषमहिं पुनि पलकमोंहै धन सबी ॥
दुर्वृद्धताकरअंगक्षीण वलीनकर सबळविदबी ॥३७॥
पश्चात गाताकिपातमैं उतपात व्रात हृदय पिखे ॥
यमराजधानी भू भयानी पतित प्राणी तिहँविखे ॥
प्राचीन कर्म मलीनके फल दीन है भुगवे तहीं ॥

असनरकके दुखनिकरते नरनिकर साकेकतनहीं३८
पुनकहूं पुण्य प्रतापते तिन तापते निकसे जबी ॥
धर विविध वेषन मुग्ध वेखहि निजस्वरूपहिं हटकबी॥
विषवत विषम रसविष्योंके जन तिहँविखेमनलायहैं।
इहहेतु नर दुखकेतपाय नपाय हरके ध्याय हैं॥३९॥

दोहा।

तजे न नट नटभाव निज, भजे अनेकस्वरूप।
नटते नरशठ तजस्ववपु,भजे विविध निजरूप॥४०॥

श्लोकः।

तुङ्गं वेश्म सुताः सतामभिमताः संख्यातिगाः संपदः, । कल्याणी दयिता वयश्च नवमित्यज्ञानमूढो जनः। मत्वा विश्वमनश्वरं निविशते संसारकारागृहे, संदृश्य क्षणभंगुरं तदखिलं धन्यस्तु संन्यस्यति ॥ १२८ ॥

तोटक छंद ।

बहुतुंगअगार कुमारमहां । नविचार पतिव्रतनारि तहाँ । पुरुहूतसमान विभूति घनी । न पुमान कहूँ कर जातिगनी । जु महाजनमाहिं महाजन हैं । तिन के मानवांछित जे धन हैं। बरते मम अग्र समग्र बहे। भवमों अब मोसम कौन अहे ॥ जड जंतु इवें जडता करके । गर्वे अतिशै मतिको हर के ॥ सब विश्व अनश्वर मान रते । परते भवकूपणगृहेनरते ॥ ४३ ॥ ममतामय संगलसंग जरे । बहु योनि धरें सुखशून्य चरें ॥ जिन या सगरे भवको मन मैं । मनके क्षणक्षीणतज्योक्षण में । बसके वनमें सत चेतन में । तदरूप भए जु इसे तनमें ॥ सुर पिश्र सभीजन ताहिं जजें । तिहँनामभजे अघ ओघभजें

दोहा ।

देत दंड बहु दंडधर, जे गर्वंत धन पाय ।
जे सुंतरां विप्रीतिकै, सहकुटुंब बिच पाय ॥ ४६ ॥

श्लोकः ।

यदा मेरुः श्रीमान्निपतति युगान्ताग्निनिहतः, समुद्राः शुष्यन्ति प्रचुरनिकरग्राहनिलयाः । धरा गच्छत्यन्तं धरणिधरपादैरपि धृता, शरीरे का वार्त्ता करिकलभकर्णाग्रचपले ॥ १२९ ॥

गीया मालती छंद ।

श्रीमत कनकगिरि दृढजबै सुप्रलयअगानिकरागिरपरे
मकरादि जंतु अनंतको घर जलधि सुकहि तिहँकरे ।
जब शेषनाग शिरानकरकै धरत अपि धरती जरे ॥
करिकरभके करणाग्रवत चल कायकी तब क्यारेर ४७

दोहा ।

हेमाद्री वारिधि धरा, रवि विधु विधिना ताहिं ।
करे अंत अंतक सकल, अहं जंतु किनमाहिं ॥४८॥

श्लोकः ।

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतं, तस्यार्धस्य परस्य चार्धमपरं बाल-

त्ववृद्धत्वयोः। शेषं व्याधिवियोगदुःखस-
हितं सेवादिभिर्नीयते, जीवे वारितरंगच-
ञ्चलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम् ॥१३०॥

कवित्त।

शुभ सतसंवत नरानकी प्रमाण आयु,
तास आधभाग नाश होय रैन सोय है।
वालवृद्धमाहिं ताहि आधो भाग बाधो आहि,
जाड्यता अशक्यताकी खानि वैस दोय है॥
शेषकी अवधी जोऊ आधि व्याधिसंग सोऊ,
भ्रमणो विदेश होऊ सेवकादि खोय है।
जीवन की आयु माहिं सुखको तो नाम नाहिं.
तोयके तरंगके समान भंग होय है॥४६॥

श्लोकः।

कृशः काणः खञ्जः श्रवणरहितःपुच्छवि-
कलो, व्रणी पूयक्लिन्नः कृमिकुलशतैरा-
वृततनुः। क्षुधाक्षामो जीर्णः पिठरककपा-

लार्पितगलः, शुनीमन्वेति श्वा हतमपि च हन्त्येव मदनः ॥ १३१ ॥

भुजंग प्रयात छंद ।

हहा मीच को नीच मारे अनंगा। इदंश्वानश्वानीकु चाहे अलिंगा॥ कृशा पिंगकाणा कटी पुच्छ गुच्छा। स्रवे पूंव्रणो तेभिगी सर्वत्वच्छा॥ कृमा संख्यके संगसों व्यावृतांगा। कटेंकीट औमक्षिका पुंज कांगा॥ तृषा भूख सें व्याकुलोजीरणांगा। गरेबीच पेटारकों पऱ्योघांगा ५१ इसे श्वानते भी नहीं कामबाचे। धनीज्वान के चित्तमों किंनराचे॥ डरे एककामारिते मैनशूरा। जटीदास के पास ते भी प्रदूरा ॥५२॥

सोरठा।

शिवभृत शिवमयहेर; मनमथ तास न मन मथे। डरेदहे मत फेर, नाम अनंग अभाव है ॥५३॥

श्लोकः।

माने म्लायिनि खण्डिते च वसुनि व्यर्थे प्रयातेऽर्थिनि, क्षीणे बन्धुजने गते परिजने

नष्टे शनैर्यौवने, युक्तं केवलमेतदेव सुधियां यज्जह्नुकन्यापयः पूतग्रावगिरीन्द्रकन्दरदरीकुञ्जे निवासः क्वचित् ॥ १३२ ॥

मनोज छंद ।

दरशे जन जो निज मान मलीन । नित क्षीण पिखे धनलाभरतीन ॥ अरथी व्यरथे फिरजात कदंब । हतबंधु जनापिख नष्टकुटुंब । निजनष्ट युवाजु सने मनजोय । इमिभ्रष्ट समाज सबी जब होय ॥ बुधिवाननको निजश्रेय निदान । युकतीकसुखेन अयं सुखखानि ॥ जलदेवनदी कर जो शुचि आहि । गिरिराज शिला उतकंदर माहिं ॥ अथवावनकुंजन मैं बुधवंत । बसके कतहूँ सिमरे भगवंत ॥ ५५ ॥

दोहा ।

नष्ट भए भवभोगको, पुन न भजे जन स्यान ॥
कहूँ विविक्तस्थानमैं, बैठ करे हरि ध्यान ॥५६॥

श्लोकः ।

प्रशान्तशास्त्रार्थविचारचापलं. निवृत्तना-

नारसवाक्यकौतुकम् । निरस्तनिःशेष-
विकल्पविप्लवं, प्रवेष्टुमान्विच्छति शंकरं
मनः ॥ १३३ ॥

कवित्त ।

विविध प्रकार वेद अर्थके संवेदवारी,
चेतनामों चंचलाई सो निकाई हत है ।
नानाविधि वाक्यनके कौतुक में रस जोऊ,
सो विरस भयो जाहिं माहिं विलसत है ॥
भांत भांत सकल विकलप प्रशांत जामें.
रजो तमो तेरेहित सतोके सहित है ।
ईश्वर की सेवहित ऐसो चित चाहिअत.
ऐसे चितहीमों सत चित विकसत है ॥ ५७ ॥

श्लोकः ।

भक्तिर्भवे मरणजन्मभयं हृदिस्थं, स्नेहो
न बन्धुषु न मन्मथजा विकाराः । संसर्ग-
दोषरहिता विजना वनान्ता, वैराग्यमस्ति
किमतः परमर्थनीयम् ॥ १३४ ॥

कवित्त ।

हरमैं सनेह तर जनममरणडर.
उरमाहिं कीनो घर बधू में न राग है ।
मनोभव जो विकार मंद संसकार डार,
संगदोष दुःख टार वसैकांत बाग है ॥
या वैराग्य भए कहा होर त्याग रहा है,
हती सब चाहि जो वैराग्यते वैराग्य है ।
हेतु परमारथको उत्तम वैराग्य ऐसो.
भाग बड़े भाग को अभाग तांते भाग हैं ॥ ५८ ॥

श्लोकः ।

भोगे रोगभयं सुखे क्षयभयं वित्ते नृपा-
लाद्भयं, माने हानिभयं जये रिपुभयं रूपे
जराया भयम् । शास्त्रे वादिभयं गुणे
खलभयं काये कृतान्ताद्भयं सर्वं वस्तु
भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभ-
यम् ॥ १३४ ॥

कवित्त ।

भोगनमों रोगभय सुखोंविषे चयभय.
धन मध्य भय भूप चोरको रहत है ।
दास माहिं स्वामि भय जयमाँझ रिपुभय,
भय कुलबीच नीचनारीको महत है ॥
मानमाहिं हानिभय गुणों में खलानभय,
कायमैं कृतांतभय भय सर्वगत है ।
निर्भय वैराग्य एक धरो नरो सविवेक,
गायो मैं अनेक अब थकी मोरी मति है ॥ ५९ ॥

दोहा ।

शुभ वैराग्य विवेक विव, करहिं वेग कल्यान ।
दृगादित्यवत हरत है, अंधकार अज्ञान ॥ ६० ॥

सोरठा ।

रजनीविन सित चंद, निशा असितशशिहीनज्यों ।
उभयसहित आनंद, त्यों वैराग्य विवेक विद ॥ ६१ ॥

दोहा ।

शत समस्त वैराग्यको, कह्यो भरतशतमाहिं ।
सत्यप्राप्तिहित वचन सत, धरो नरो उर ताहिं ॥६२॥

सोरठा ।

विन संग्रह सुविचार, पशू बद्ध ज्ञानी दुखी ।
पंत्ती पंखप्रकार, उभयसहित सुख गति लहित।६३

दोहा ।

मुगधहुँके उरउपलमहिं, भरतवचन बट हेतु ।
कहूँ पुण्यखगयोगते, बसे लसे देत ॥ ६४ ॥

लोष्टछापभाषा शुक्ति, वज्र भरत के बैन ।
सार मुमोत्ती पारखू गहे सर्वदा चैन ॥ ६५ ॥

प्रकट विष्णुसम संस्कृत, भाषा हरिपाषाण ।
श्रद्धामान पुमानको, करत उभय कल्याण ॥ ६६ ॥

सवैया ।

तीरथा कि माहिं सनान समान करे वहु दानमहान मणीके । शमशान मठान तरूनतरे इसथान करे उत तीरनदी के ॥ मुखमौन धरे तज मौन चरे अर वेद ररे सुपढ़ावत नीके ॥ गुणए ततवृंद बरात जना वरएक विराग विना सब फीके ॥

कवित्त ।

दैवी गुण कवीगण औषधी समादि पुष्टे,
तृष्णाताप मोहतम कामचोर हत है ।
मुदित विवेकी कामी दुःखी मूढ द्रोही वामी,
उदे धीत्रियामीमों कुसंग दिने गत है ॥
सकुचे सरोजभोगी मोक्षसुधा के संयोगी,
श्याम श्वेत भोगी योगी मो वढ़े घटत है ।
दोषवेद माने नाहिं जनम न व्योममाहिं,
विधुवत विकसत निरवेद स्त है ॥ ६८ ॥

दोहा ।

अंकवृंदको गुंदकर, बंद छंदको कीन ।
तुटत युक्ति छंदार्थ जहँ, कवी सुधारो तीन ॥ ६९ ॥
योगीजनके बचनको भोगी भेद अविंद ।
ईशकृपावल यथामति, कह्यो सिंधुमों बिंदु ॥ ७० ॥

कवित्त ।

वसे शिवा वामे अंग लसे भूतजूथ संग,
ग्रसे भंग शीश गंग ज्ञान तीन कालको ।

धेनुबाल वाहन सुधालबाल भाल धरे,
गरे व्याल रुंडमाल तरे सिंहखालको ॥
नाथन के नाथ हैं अनाथन के नाथ देव,
जाँके पादपाथ माथ धरे हरे कालको ।
दयासिंधु अलकाम कामरिपु सुखधाम,
हरद्यालको नमाम ऐसे हर द्यालको ॥ ७१ ॥

सवैया ।

सुखशांत स्वरूप सवें अहि ऊपरवारि जनाभसुरेश किराई ॥ सबविश्व अधार अकाश प्रकारसुवारिदरंग शुभांग सवाई। वर श्रीवर लोचननीरज से जिहँचीरत योगि समाधि लगाई ॥ भवत्रास किनाश किहे त नमोतिन लोक पती इक ताँह रिताई ॥

छप्पय छंद ।

उचित भरतवैराग्य इनाहिं इंद्रादि न पावहिं ।
विषय भोगसंयोगविषे सुर जन्म वितावहिं ॥
प्रकटे जो इक बार पुण्य सब बहु जन्माको ।

यहि वैराग्यहि भाग तो हिंडत भाग जनाको॥ ७३॥
भव हरे खेद निरवेद तिहँ करे शांत उर भ्रांतिहत।
जो करे निरादर ताहिको कहु नसुखआदर लहत॥

दोहा।

रविप्रभाव त्र्योदशो यह,हरहि तिमिर उरभ्रांति।
शांतिहेतु स्वजनानको, भयो आप अब शांत॥७४॥

सोरठा।

भरतशतक वैराग्यं, प्रारंभ्या चुहिणीपुरे।
समं पवित्र प्रयोग, सुधासरे इति श्री भयो॥ ७५॥
शशिवसुखवसुरस शशिवर्ती, दरशासूके माहिं।
संपूरण संपूरणं, भयो ग्रंथ शुभ आहि॥ ७६॥

* समाप्त *

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ स्तोत्राणि ।

तत्र अमृतसरः स्तोत्रम् ।

श्रीनानकाख्यगुरुणा रचितं पठन्ति ग्रन्थं जानयुवतयोऽपिच तेनयत्र । ब्रह्मावबोधगतशोकतयावसन्ति श्रीरामदासनगरं भजे तत्सुबुद्धे ॥१॥ संशोभतेऽमृतसरः खलु यस्य मध्ये नाम्ना ततोऽमृतसरो जगति प्रसिद्धम् । यस्यामृतं हरति जन्म न नाकनिष्ठं श्रीराम० ॥ २ ॥ यत्रामृतस्य सरसो हरिमन्दिरं वै मध्ये-विभाति कनकेन कृतं विचित्रैः । नानाविधैर्मणिगणैर्घटितं च दिव्यं श्रीराम० ॥ ३ ॥ आस्ते हरिः सकलपापहरो हि यस्मिन् सा ज्ञात्स्वमन्दिर उदारतराच्छकान्तौ । श्रीग्रन्थनामधृगनन्तगृहीतरूपः श्रीराम० ॥ ४ ॥ गायन्ति गानकुशलाः सततं हि तत्र वैराग्यबोधजनकं गुरुशब्दमेव । शान्तिव्रजन्तिहरिमन्दिरएव तेन श्रीराम० ॥५॥ श्वेताश्मसंघटितदीर्घविशालसेतौ

ध्यायन्ति केचिदपरे विमृशन्ति यत्र । पृच्छन्ति केचिदितरे प्रवदन्ति तज्ज्ञाः श्रीराम० ॥६॥ सेतुस्थभक्तजनपादरजोभिषेकान्नश्यन्ति कोटिभवसंचितदुष्कृतानि । दुःखं च यत्र सकलानि हरिप्रसादत् श्रीराम० ॥७॥ संभाति हाटकमयी निकटे पताका कान्त्या च भानुसदृशी हरिमन्दिरस्य । दिव्यातिसुन्दरतनुः सुखदा च यत्र श्रीराम० ॥८॥ संभात्यकालपुरुषस्य महच्च यत्र दिव्यं सुमन्दिरमनेकसुशिष्यजुष्टम् । मन्त्रोपदेशकुशलैः परिरक्षितं च श्रीराम० ॥९॥ चौकीति नाम विमलो गुरुशिष्यसंघः सायं परिक्रमविधौ सततं प्रवृत्तः । संशोभते हि गुरुशब्दमुखश्च यत्र श्रीराम० ॥१०॥ संराजतेऽमृतसरोवरतीर्थतीरे देदीप्यमानवरमन्दिरदिव्यपंक्तिः । नानाकृतिश्च परितोऽतिथयो हि यत्र श्रीराम० ॥११॥ ऐरावतीवरनदीसलिलं पवित्रं यत्रामृतस्य झटिति प्रविशद्धि कुण्डम् । रूपं स्वनाम च विहाय भवेत्सुधांशु श्रीराम० ॥१२॥ ऐरावतीसलिलसंगमदेशपार्श्वे

आस्ते भवो भवहरो वटवृक्षछायाम् । आश्रित्य दी-
र्घसघनां वरदश्च यत्र श्रीराम० ॥१३॥ तिष्ठन्ति
भीमनिकटे सततं हि यत्रोदासीनवर्य्यमुनयः सजटा
विभूत्या । संशोभमानतनुकान्तिधरा महान्तः श्री
राम० ॥१४॥ कुष्ठावृतं स्वपतिमीशधिया भजन्ती
संस्थाप्य योषिदशनाय गता गृहीत्वा । आगत्य सु-
न्दरतनुं स्वपतिं विलोक्यापृच्छत्पतिं च भिषजा
खलु केन दिव्यः ॥१५॥ देहः कृतो हि भवतां वर-
मौषधं किं सर्वं वदस्व कृपयेति शृणुष्व भद्रे । भाग्येन
लब्धमिदमौषधमेव नान्यत्काकः कुपक्षयुत एव
बलिष्ठकाकैः ॥१६॥ संपीडितोऽत्र पतितः सलिले
सुपत्रो जातः क्षणादिति विलोक्य मयाऽत्र दिव्ये ।
स्नातं जले सकलरोगविहीनदिव्यो देहो ममाभवद-
तोऽमृतमेव विद्धि ॥१७॥ नान्योऽत्र कश्चन समा-
गत एव वैद्यः सत्यं ब्रवीमि वचनं कुरु चात्र भक्तिम् ।
यत्रेत्थमास पुरुषस्य कथा स्वनार्य्या श्रीराम० ॥१८॥
वासिष्ठभागवत भारतमेव नित्यं शृण्वन्ति केचिदपरे

प्रतिबोधयन्ति । पीयूषकुण्डनिकटे सुधियश्च यत्र श्रीराम० ॥१६॥ स्नात्वा सुधासरसि विष्णुशिवादिपूजां कुर्वन्ति केचिदतरे मनसो निरोधम् । स्तोत्राणि पावनतमानि पठन्ति यत्र श्रीराम० ॥२०॥ रात्रौ सदोऽमृतसरोवरतीर्थतीरे कृत्वा सदा हि विमृशन्ति विवेकनिष्ठाः किं ब्रह्म का प्रकृतिरात्मवपुश्च कीदृक् पृच्छन्ति केचिदिति केऽपि वदन्ति सन्तः ॥२१॥ सत्यादिचिह्नमिति केऽपि वदन्ति तज्ज्ञा ब्रह्मास्ति हेतुरखिले हि विकारमात्रे । एवं च केचन वदन्ति महानुभावा देशादिभिः परिमितं न यदेव तद्धि ॥२२॥ मायां त्विति श्रुतिबलात्प्रकृतिं च मायां केचिद्वदन्ति कुशला अपरे गुणानाम् । साम्यस्थितिं प्रकृतिमेव वदन्ति धीराः शक्तिं परस्य पुरुषस्य वदन्ति चान्ये ॥२३॥ आभासमेव तु चितः प्रवदन्ति जीवं केचित्परे सुमनसः प्रतिबिम्बमाहुः । कूटस्थलिङ्गतनुचित्प्रतिबिम्बसंघं केचिद्वदन्त्यसुधृतेरपरे वदन्ति ॥२४॥ इत्यादिकं बहुविधं खलु यत्र कुत्र मित्रैः

सुतैः स्वजनकैश्च रमाश्रमस्थैः। वाक्यान्नरा सुमन
सःप्रवदन्ति यत्र श्रीरा० ॥ २५ ॥ स्तोत्रं पठन्ति य
इद सततं विशुद्धाः श्रद्धां विधाय नियमाद्गुरुभक्ति-
युक्ताः। रागादिदोषरहिताः पुरुषाः सदैव ते श्री
सुधामरसि वासमतो लभन्ते ॥ २६ ॥ इति श्रीमदु-
दासीनवर्य्यगङ्गारामशिष्येणो दासीनात्मस्वरूपेण
विरचितं श्रीमदमृतसरः स्तोत्रं समाप्तम् ॥

अथ ज्ञानदीपाख्यं स्तोत्रम्।

ॐ परीक्षा विधाय प्रमाणैर्विरक्तो न मे स्याद्विना
शीति निष्ठा प्रयातः। गुरुं श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं च
गत्वा यदाप्नोति तत्व तदेवाहमस्मि ॥ १ ॥ स विद्वा-
न्तं विनेयं प्रपन्नं निरीक्ष्य प्रसन्नः कृपाधीन
चित्तः। अधिष्ठानमस्य प्रपञ्चस्य यद्धि वदेन्नित्यशुद्धं
तदेवा० ॥२॥ अवस्थासु सर्वासु भात्येकरूपं स्वाभा-
स्यैर्न भातीन्द्रियाद्यैः सदैव। घटाद्यैर्यथाभानुरात्म
स्वरूपं परं बोधरूपं तदेवा० ॥ ३ ॥ निषध्याखिलं
दृश्यजातं निषेध्यं निषेधावसानं स्वतोभासमानम्।

मनोवागतीतं परनन्दरूपं परं ज्योतिराद्यं तदेवा०
॥ ४ ॥ अहन्तां परित्यज्यदेहे ह्यनित्ये यथास्वप्नदृष्टे
प्रबोधं प्रयाति । तथा ता परित्यज्य जाग्रच्छरीरे
भवेद्ब्रह्म यत्नात्तदेवा० ॥ ५ ॥ मुमुक्षा प्रशान्तिं
यदास्य प्रयाति न बन्धो न मोक्षोऽनुभूत्याऽस्ति
यस्य । न जन्मापि मृत्युर्न पुण्यं न पापं समाधिस्त-
दन्यस्तदेवा० ॥ ६ ॥ श्रुतं ब्रह्म सृष्टेः पुरा भेदशून्यं
सदेकं यथा वर्तमानेऽपि काले । तथैवास्ति मोक्षा
वसानं न यस्मिन् विभेदोऽस्ति किंचित्तदेवा० ॥ ७ ॥
यदज्ञानतो दुःखराशौ निमज्जेत् सुखाब्धौ च यस्य
प्रबोधेन सद्यः । भवेत्कृत्यशून्योऽथ यस्यानुभूत्या
सदाशुद्धरूपं तदेवा० ॥ ८ ॥ इहामुत्रभोगाद्विरक्तः
परात्मानुसंधाननिष्ठः पुमाञ्छुद्धबुद्धिः । तमोहीन-
चक्षुः स्तवं ज्ञानदीपं पठेद्यो न भूयो वसेन्मातृकुक्षौ
॥ ९ ॥ इति श्रीमदुदासीनवर्य्यगंगारामशिष्येणोदा-
सीनात्मस्वरूपेणं विरचितं ज्ञानदीपाख्यं स्तोत्रं
समाप्तम् ॥ शुभमस्तु सर्वजगताम् ॥

अथ श्रीकृष्णाष्टकम् ।

आनन्दलेशमनुगत्य भवन्ति यस्य ब्रह्मादयो-
ऽपि सुखिनः सकला हि देवाः । आनन्दसिन्धुम-
खिलं त्वनुभूय वाक्यात्कृष्णं भजामि चितिरूपमजं
तमेकम् ॥१॥ अर्केन्दुवह्निवचने सततं प्रशान्ते सर्वो
जनो व्यवहृतिं कुरुतेऽथ येन । सुप्तो विलोपरहितं
मनाग्मि प्रलुप्ते कृष्णं० ॥२॥ यं ज्योतिषां सुरगणा
विदुरप्रमेयं दीपं मनोऽपि मनसा नयनस्य नेत्रम् ।
श्रोत्रस्य यः श्रवणमेव भवेत्परात्मा कृष्णं० ॥ ३ ॥
यस्याप्रबोधवशतो निरयप्रवेशं मूढा व्रजन्ति बहु-
योनिषु चापि दुःखम् । बोधेन यस्य लभते न च
दुःखगंधं कृष्णं ॥ ४ ॥ प्राणेन जीवति नरो नहि
कश्चिदेव नापानतोऽपि सततं त्वितरेण येन । सर्वो-
ऽपि जीवति जनः श्रुति सिद्धमीशं कृष्णं० ॥ ५ ॥
नेदिष्ठमेव विदुषामनुभूतिमानात् प्रत्यक्तया स्फुरण
तो भुवनप्रकाशात् । दूरात्सुदूरतममेवबहिर्मुखानां
कृष्णं० ॥ ६ ॥ पद्मोद्भवं स्वतनयं प्रहिणोति वेदान्

या यस्य धावति शयेन च मृत्युरेष: । अग्निर्भयेन तपति द्युमणिश्च यस्य कृष्णं० ॥७॥ यो वेत्तिवेद्य मखिलं न च वेदितान्यो यस्यास्ति कश्चिदपि वेद-कृदेव यश्च। यं वेदवेद्य इति वेदविदो वदंति कृ०॥८॥ बोधादिमं पठति योऽमलधी: सदैव भक्त्या स्तवं सुखतमे प्रणिधाय चित्तम् । कृष्णे परे विमलबोध घने प्रशांते बंधं विधूय पुरुषो विशते सकृष्णम्॥९

इति श्रीमदुदासीनवर्य्यगङ्गारामशिष्येणोदासीना-त्मस्वरूपेण विरचितं श्रीकृष्णाष्टकं समाप्तम् ॥

अथ श्रीरामाष्टकम् ।

यस्मादुदेति निखिलं स्थिरजङ्गमं यो वाचा धिया च विषयो न भवेत्सदैव । यस्मिन्स्थितो नलभते पुनरेव जन्म तं राममद्वयमनन्तमनादिमीडे ॥ १ ॥ कोशान् विहाय सकलान्परिशेषमात्रं जानन्ति यं विमलबोधदृशा महान्तः । ब्रह्मेति वेदवचसा गुरु देवभक्तास्तं राम० ॥ २ ॥ त्यक्त्वा तनुं यममलं प्रवि

शन्ति तज्ज्ञा ध्यायन्ति यं शिवविरञ्चिमुखाश्च देवाः
पश्यन्ति योगनिरता विजितेन्द्रिया यं तं राम०॥३॥
तावत्त्वलीकमपि सत्यतया विभात्यधिष्ठानमस्य विदि
तं न भवेद्धि यावत् । बोधेन यस्य न विभाति तथा
खनैल्य तं राम० ॥ ४ ॥ भासार्कसोमचपलानलतार
काणि लोहादितप्तमनलेन तथा विभान्ति । यस्या-
नुभानमुपयान्ति मनोवचासि तं राम०॥५॥ सूर्येन्दु
रूपनयने चरणौ च भूमिः प्राणोऽथ यस्य पवनो
हृदयं च विश्वम् । मूर्धानलो भवति वाग्विवृताश्च
वेदास्तं राम० ॥६॥ सृष्ट्वा प्रविश्य तदनु स्वयमेव
सच्चत्यच्चाभवच्च ऋषिभिः सततं विमृग्यः । लब्ध्वा
रसं यममलं सुखमाप्नुवन्ति तं राम० ॥७॥ यश्चेतन-
श्चितिमतां मतिलोचनानां नित्यश्च योगगणशब्द-
मुखश्रवाणाम् । सत्ताप्रदो न तु सतामनुभूतिसिद्धस्तं
राम० ॥८॥ ज्ञानात्पुमान् विमलधीर्विरतिं प्रयातो
जन्यात् स्वकर्मफलतो भुवनाशभाजः । स्तोत्रं पठेद्य
इह राघवभक्तियुक्तः पातुं न वै स लभते जननीपयां-

सि॥६॥ इति श्रीमदुदासीनवर्य्यगङ्गारामशिष्येणोदा
सीनात्मस्वरूपेण विरचितं रामाष्टकं संपूर्णम् ॥

अथ ब्रह्मनिरूपणाख्यं स्तोत्रम् ।

आराध्य राममखिलेश्वरमादिदेवं प्राप्येति पृच्छति गुरुं किमिदं च कोऽहम् । तं शिष्यमाह कृपयेति गुरुर्महात्मा ब्रह्मेदमस्ति सकलं त्वमहं तथैव॥१॥ अग्नि-र्यथा हि भुवनं गत एक आस्ते नानाकृतिः स्थिरचरं पुरुषस्तथातः । जुष्टां सदेति मुनिभिर्धिषणां गृहाण ब्रह्मे०॥२॥ चन्द्रो यथा बहुविधो जलपात्रभेदादेकस्त था मतिषु भाति परः प्रविष्टः । तेषां भिदास्ति जगतो न सदेति विद्धि ब्रह्मे०॥ ३॥ सर्वासु दिक्षु च विदिक्षु कणाः प्रवृत्ता वह्नेर्यथापि न भवन्ति ततो विभिन्नाः । जीवास्तथात्मन इदं च ततोऽवबुद्धं ब्रह्मे०॥४॥ द्रष्टा-स्ति नाय इत आत्मन एष देवः सर्वेषु तिष्ठति चिदा-त्मतया विभातः । आत्मैव सर्वमिति वेदवचोऽस्ति तस्माद्ब्रह्मे० ॥५॥ आत्मैव ते यमथिता वपुरस्य सर्वं

शास्ता प्रविश्य सकलस्य जनस्य यो हि। इद्धोंऽशुमां-स्तपति येन तदेव शुद्धं ब्रह्म० ॥६॥ एकं यमूचुरमलं बहुधा स्वबुद्ध्या प्राज्ञाश्चतुर्मुखयमेन्द्रहुताशरूपम् । भेदं प्रकल्प्य तत एव सदेति पश्य ब्रह्म०॥७॥ नारा-यणात्मकमिदं जगदाह वेदो जातं यतो भवति तत्र ततो विभिन्नम् । तोयात्तरङ्गमिव वेद्मि सदेति तस्मा-द्ब्रह्म० ॥ ८ ॥ ज्ञानादिदं पठति यः खलु शुद्धबुद्धिः स्तोत्रं मनः परतरे प्रणिधाय नित्यम् । ज्ञात्वा परात्प-रतरं परिमुच्य बन्धं सद्यः पुमान्भवति सोऽथ परात्म रूप॥९॥ इति श्रीमदुदासीनवर्य्यगंगारामशिष्येणो-दासीनात्मस्वरूपेण विरचितमखिलब्रह्मनिरुपणं नाम स्तोत्रं समाप्तम् ।

श्रीमद्भगवद्गीता

श्रीस्वामी किशोरदास कृष्णदासकृत
सरल हिन्दी भाषा में ।

इस पुस्तक की भाषा ऐसा सरल है कि हिं० की पहली दूसरी पढ़ने वाले भी इसको बड़ी आसानी से बिना किसी गुरु के इसको पढ़कर गीता रूपी अमृत का पान कर सकते हैं । इस पुस्तक के साथ १८ ही अध्यायों के १८ ही माहात्मय दिये हैं ।जिसमें बताया गया है कि गीता ही एक ऐसा ज्ञान है जिसे पढ़ने से मोक्ष की प्राप्ति होती है । स्त्रियों के तो विशेष काम की पुस्तक है । इसका प्रचार भी भारत में इतना है कि साल भरमें ५–६ हजार पुस्तक छपती है बडे मोटे अक्षरों में चिकने कागज पर मुम्बई टाईप में छापीगई है । कपडे की जिल्द सहित लगभग ५०० पृष्ट की पुस्तक का दाम केवल १॥) रखा गया है जो कि केवल लागत मात्र प्रचार के लिये ही है । शीघ्रता कीजिये ॥

॥ योगवासिष्ट ॥

सरल भाषा में

यह वही पुस्तक है जिसमें कि श्रीरामचंद्रजी को जो ज्ञान गुरु वासिष्टजी न दिया है उसीका वर्णन है। पुस्तक क्या है वैराग्य का खजाना है। जिसे जरा भी मोक्ष चाहने की इच्छा है उसे इस पुस्तको एक वार अवश्य पढ़ना चाहिए। आजतक यह जितनी वार छपी सभी छोटे अक्षरोंमें छपी थीं।अबके हमने इसको अति मोटे अक्षरोंमें मोटे कागजपर छापा है। वैराग्य और मुमुक्ष प्रकरण। बढिया जिल्द सहित मुल्य लागतमात्र का केवल २) है। इनके सिवाय हर एक प्रकार की पुस्तक मिलने का पताः—

Printed by Sardari Lal Manager. at the Bombay Sanskrit Press, Saidmitha Bazar, Lahore.